परम पूज्य मुनिश्री प्रणम्यसागर जी महाराज
द्वारा रचित

लक्ष्य

(जीवन्धर चरित्र पर आधारित)

आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति

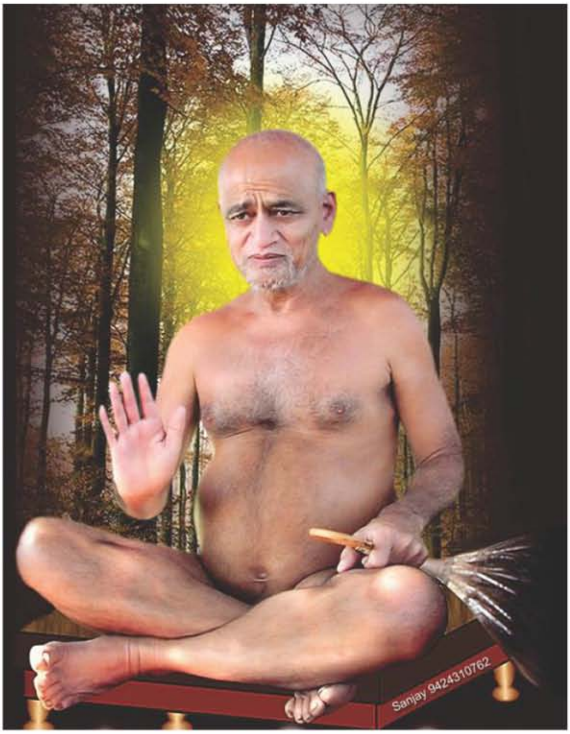

आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज की जीवन झाँकी

पूर्वनाम	:	विद्याधर
जन्म	:	10 अक्टूबर, 1946 (शरद पूर्णिमा)
जन्म स्थान	:	सदलगा जिला बेलगाँव (कर्नाटक)
पिता	:	श्री मलप्पा जी (समाधिस्थ 108 मुनि श्री मल्लिसागर जी महाराज)
माता	:	श्रीमति श्रीमति जी (समाधिस्थ आर्यिका श्री समयमति जी)
ब्रह्मचर्यव्रत	:	1967 में आचार्य देशभूषण जी महाराज से
मुनिदीक्षा	:	30 जून, 1972 आचार्य श्री ज्ञानसागर जी से (अजमेर में)
शिक्षा	:	हाईस्कूल (कन्नड़ माध्यम से)
कृतित्व	:	नर्मदा का नरम कंकर, डूबो मत/लगाओ डुबकी, तोता क्यों रोता (काव्य संग्रह), चेतना के गहराव में (सचित्र), मूकमाटी (महाकाव्य), छः संस्कृत शतक, सात हिन्दी शतकों के अतिरिक्त अनेक जैन ग्रंथों का पद्यानुवाद तथा हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, बंगला आदि में स्फुट रचनाएँ भी।

(जीवन्धर चरित्र पर आधारित)

परम पूज्य मुनि श्री प्रणम्यसागर जी महाराज
द्वारा रचित

लक्ष्य

प्रकाशक :
आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति
109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्जैन (म.प्र.)

कृति
लक्ष्य (जीवन्धर चरित्र पर आधारित)

आशीर्वाद
परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

रचयिता
परम मुमुक्षु मुनि श्री प्रणम्य सागरजी महाराज

संस्करण
द्वितीय–नवम्बर 2016, 1000 प्रतियाँ
तृतीय–जून 2019, 2100 प्रतियाँ

मूल्य
मात्र 50/– रुपये (पुनः प्रकाशन हेतु)

ISBN : 978-81-939298-5-8

सहयोग
श्री अमित जैन, वर्तिका, आशना, ऊषा एवं अवरिल जैन
KP-210, पीतमपुरा, दिल्ली–34

प्रकाशक
आचार्य अकलंक देव जैन विद्या शोधालय समिति
109, शिवाजी पार्क, देवास रोड, उज्जैन (म.प्र.)
फोन : 2519071, 2518396

प्राप्ति स्थान
आर्हत विद्या प्रकाशन, गोटेगाँव मो. 094258–34476
आचार्य अलकंक देव जैन विद्या शोधालय समिति

आरसी प्रैस–नई दिल्ली द्वारा मुद्रित, फोन : 9871196002

मनोभावना

जैनदर्शन की सबसे बड़ी विशेषता है कि उनकी कथा-कहानियों में काल्पनिक पात्रों का कथन नहीं किया जाता है। वह मोक्षगामी महापुरुषों के जीवन-चरित्र का वर्णन, समीचीन ज्ञान और दिशा देने वाला होता है। इसीलिए भरत, सागर आदि सभी महापुरुष भी अपने समय में होने वाले या पूर्ववर्ती महापुरुषों की कथा पढ़ने सुनने में रुचि लेते थे। उनका शुभोपयोग प्राय: इसी ढंग से व्यतीत होता था। अधिकतर कथानकों में यह भी मिलता है कि इन्द्र की सभा में अमुक-अमुक महापुरुष की चर्चा चल रही थी जिसे सुनकर आश्चर्यचकित होकर कोई देव उन महापुरुष की परीक्षा करने के लिए आ गया। इससे भी स्पष्ट है कि इन्द्र की सभाओं में प्राय: महापुरुषों के जीवन-चरित्र का वर्णन ही कहा सुना जाता है। सम्यग्दृष्टि का शुभोपयोग प्राय: ऐसे ही शुभ भावों से अशुभ को बचाता है।

एक ओर, कुछ निश्चय एकान्तवादियों ने इस प्रथमानुयोग की महत्ता को नकार दिया और कथा-कहानी मात्र कहकर जिनवाणी का अपमान करना भी शुरू कर दिया है। दूसरी ओर, प्रथमानुयोग की कथाओं को साहित्य में अलंकार, रस, छन्द-शब्दाडम्बर की बहुलता से प्रस्तुत करने की प्रथा रही है जिससे भी बहुत से कथानकों से जन- सामान्य सीधे-सीधे लाभ नहीं उठा पाता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि इन जीवनोपयोगी चरित्र-कथाओं को सरलता से संजोया जाए एवं कथा पर कथा कहने की बहुलता से बचकर एक ही कथा को धीरे-धीरे एपीसोड बनाकर प्रस्तुत किया जाय, जिससे पाठक की रोचकता बढ़ती रहे और महापुरुषों की जीवनी से सभी अवगत हों। इसी भावना से जीवन्धर कुमार के इस चरित्र को लघुकाय पुस्तक में बाल-सुलभ शैली में संजोया है। कोई भी शिक्षक प्रतिदिन एक-एक अध्याय सम्बन्धी उस कथानक को पढ़ाए, उससे सम्बन्धित प्रश्न-उत्तर करके बच्चों का मौलिक चरित्र बढ़ाए, इसी भावना से यह कथानक इस नई विधा के साथ रचा है। प्राचीन पुरुषों

के कथानक सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओं का समाधान यदि विद्यार्थियों को मिलता है तो उन्हें जीवनोपयोगी–नैतिक शिक्षा, चरित्र की दृढ़ता, धैर्य, धर्म–पुरुषार्थ आदि मूल्यों का ज्ञान सहज ही हो जाता है। विद्यार्थियों की रोचकता बढ़ाने के लिए ही इस लघुकाय पुस्तक में चित्रों का भी यथास्थान समावेश किया गया है। आचार्य वादीभसिंह को यह कथानक इतना प्रिय था कि उन्होंने उच्चकोटि की दो साहित्यिक कृतियों का सृजन इसी एक पात्र को आधार बनाकर किया है। एक तो है 'क्षत्रचूड़ामणि' जो छोटे–छोटे श्लोकों के माध्यम से संस्कृत भाषा में रचा गया है। इस कृति की सबसे बड़ी विशेषता है कि प्रत्येक श्लोक के अन्तिम चरण में प्रायः सूक्ति वाक्यों की रचना मिलती है। ये सूक्ति–वाक्य जीवनोपयोगी व्यवहारिक सूत्र हैं। इन पर अमल करने वाला प्राणी जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः ही पा लेता है। सभी सूक्तियों को वाक्यों में पिरोया गया है। शिक्षक और विद्यार्थी, दोनों इन्हें याद करें और उचित अवसरों पर बोलकर इनका प्रचलन बढ़ायें। जैसे 'शैले–शैले न माणिक्यं मोक्तिकं न गजे–गजे' ऐसे वाक्य सबको याद रहते हैं। वैसे ही जैनाचार्यों द्वारा प्रणीत सूक्तियों का प्रचलन बढ़ाना चाहिए।

दूसरा ग्रन्थ 'गद्य चिन्तामणि' नाम से है जो गद्य–पद्य दोनों से युक्त एक चम्पू–काव्य है। इसमें भी उनके प्रिय पात्र जीवन्धर कुमार नायक हैं। इसके अतिरिक्त अन्य आचार्यों ने भी इस पात्र को अपनी लेखनी का विषय बनाया है। पूर्वाचार्यों की इस पात्र–प्रियता को देखकर ही मेरा मन भी इसे बाल सुलभ शैली में लिखने का हुआ जो रतलाम (म.प्र.) में शीतकाल प्रवास के दौरान ही पूर्ण हो गया। इसे प्रकाशित करने की संयोजना अब भीण्डर चातुर्मास में पूर्ण हुई है। इसका लाभ आज की नई पीढ़ी अधिकाधिक ले। पाठशाला में पढ़ने हेतु उपयोगी बने। इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ पूज्य गुरुदेव आचार्य श्री विद्यासागर जी के चरणों में नमन करते हुए। इत्यलम्

भीण्डर वर्षायोग/2004 – मुनि प्रणम्यसागर

(दोहा)

सिद्धशिला पर शोभते सिद्ध पुरुष भगवान्।
सिद्ध जीव की कथा सिद्ध गुणों की खान॥१॥

जीवंधर क्षत्रिय पुरुष जिनका चरित महान।
पढ़े सुने कहता रहे पा जाता कल्याण॥२॥

धर्मधुरन्धर न्यायप्रिय शब्द सिद्ध श्रुतज्ञान।
परवादी गज केसरी श्रीवादीभ महान॥३॥

जीवंधर प्रिय चरित का चिन्तामणि सा गद्य।
और लिखा वादीभ ने चूड़ामणि सा पद्य॥४॥

लोकोत्तर शिक्षामयी जिनकी कथा पवित्र।
वर्तमान में लोक में फैलें जैसे इत्र॥५॥

यही भाव शुभ धार के सरल मधुर ले भाव।
कर प्रणम्य विद्यागुरु चरित लिखूँ धर चाव॥६॥

मात्र भावना मम यही सिद्ध पुरुष गुण गान।
बाल युवा अरु वृद्धजन करें उन्हीं का ध्यान॥७॥

(वसन्ततिलका)

श्री देव शास्त्र गुरुवर्य हमें संभालें
सद्बुद्धि देकर हमें हर रोज पालें।
अन्याय से बच चलूँ सुख मार्ग पाऊँ
आशीष दो चरण में नित शीश नाऊँ॥

श्री वर्धमान महावीर भगवान् के समय की यह घटना है। श्रावक शिरोमणि मगध सम्राट राजा श्रेणिक घूमते हुए भगवान् महावीर के दर्शन के लिए जा रहे हैं। रास्ते में अशोक वृक्ष के नीचे मुनिराज ध्यानमग्न हैं। राजा श्रेणिक उन मुनिराज के सुन्दर, बलिष्ठ और क्षत्रिय-कुल सम्बन्धी शरीर के लक्षणों को देखकर उनके दर्शनार्थ और अधिक उत्सुक हो गए। उनके शरीर के अद्भुत तेज के साथ-साथ मुखमण्डल की शान्त, सौम्य मुद्रा, उनका ध्यान अत्यधिक आकृष्ट करने लगी। राजा श्रेणिक ने मुनिराज को 'नमोऽस्तु' करके आनन्दित होते हुए भगवान् के समवसरण में पहुँचकर गौतम गणधर देव से पूछा-भगवन्! ये मुनिराज कौन हैं? जिनका अभी-अभी हम पवित्र दर्शन करके आ रहे हैं। जिनकी ध्यान की एकाग्रता देखकर लगता है कि वह सिद्ध बनने ही वाले हैं और जिनका तेज, रूप-सौन्दर्य किसी महापुण्यवान् क्षत्रिय पुरुष-सा लगता है। कृपया आप मेरी जिज्ञासा का समाधान अवश्य करें।

अहो! धन्य है श्रमण भगवन्तों का यह अलौकिक कार्य, जिसकी कथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव भी समवसरण में सुनने को लालायित रहते हैं।

सच है, आत्मा से बात करने वालों की बात सुनना ही तो सम्यग्दर्शन की सौगात है।

सुनो श्रेणिक! सुनो-इसी भरत क्षेत्र में एक हेमांगद देश (वर्तमान का मैसूर प्रान्त) है। उसकी राजधानी 'राजपुरी' है। वहाँ का कुरुवंशी राजा सत्यन्धर है। उनकी रानी का नाम है 'विजया'। राजा का मन्त्री है 'काष्ठांगार'।

प्रश्न 1. भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण कब हुआ?

उत्तर : भगवान महावीर का निर्वाण ईसा से 527 वर्ष पूर्व हुआ अर्थात् आज (सन् ई. 2013) से 2540 वर्ष पूर्व।

प्रश्न 2. राजा श्रेणिक कौन थे?

उत्तर : भगवान् महावीर के समवसरण के मुख्य श्रावक थे। इन्होंने भगवान् से 60 हजार प्रश्न किए। यह मगध (वर्तमान बिहार) के सम्राट राजा थे। इनके राज्य की राजधानी राजगृही थी। वहीं पर भगवान् महावीर का समवसरण विपुलाचल पर्वत पर लगता था।

प्रश्न 3. राजा श्रेणिक ने मुनिराज के बारे में किससे पूछा?

उत्तर : गौतम गणधर से।

प्रश्न 4. गौतम गणधर कौन थे?

उत्तर : भगवान् महावीर स्वामी के मुख्य प्रथम दीक्षित मुनि शिष्य थे।

प्रश्न 5. गणधर किसे कहते हैं?

उत्तर : भगवान् के मुख्य शिष्य गणधर होते हैं। भगवान् महावीर के ग्यारह गणधर थे। इनकी मुख्य विशेषतायें–

१. ये नियम से केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष जाते हैं।

२. ये केवलज्ञान को छोड़कर त्रेसठ (63) ऋद्धियों के स्वामी होते हैं।

३. इनके पास मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान होता है, अर्थात् ये चार ज्ञान के धारी होते हैं।

४. ये ऐसी ऋद्धि के धारक होते हैं, जिससे भगवान् की वाणी को ग्रहण करने की और समझकर उसे बहुत समय तक धारण करने की क्षमता इनके सदा बनी रहती है।

५. 'गण' अर्थात् मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका इन चारों के नायक होने से इन्हें 'गणधर' कहते हैं।

६. पंच परमेष्ठी में इन्हें 'आचार्य' परमेष्ठी ही जानना चाहिए।

प्रश्न 6. हेमांगद देश कहाँ हैं?

उत्तर : इसी जम्बूद्वीप के, भरत क्षेत्र के आर्य खण्ड में, भारतवर्ष में मैसूर राज्य को हेमांगद कहा जाता था।

प्रश्न 7. वहाँ के राजा और रानी का नाम क्या था?

उत्तर : राजा सत्यन्धर और रानी विजया।

प्रश्न 8. इस प्रसंग से आज हमने क्या शिक्षा ग्रहण की?

उत्तर : हमें राजा श्रेणिक की तरह मुनिराज का दर्शन करके उन्हें 'नमोऽस्तु' अवश्य करना चाहिए। फिर उन मुनिराज के गुणगान सुनने में आनन्दित होना चाहिए। सत्य ही है–

यद्भक्तिः शुल्कतामेति मुक्तिकन्याकरग्रहे ॥क्ष.चू.१/१॥

अर्थात् जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति मुक्तिरूपी कन्या से पाणिग्रहण करने के लिए शुल्क (धन) का काम करती है।

(2)

सत्यन्धर राजा बहुत पुण्यवान् था। उसकी रानी विजया बहुत सुन्दर थी। रानी के रूप-सौन्दर्य में वह इतना मुग्ध हो गया था कि उसे राज्य कार्य की कोई चिन्ता नहीं रहती थी। मानो उसे प्रजा की आवश्यकता ही नहीं है? राज्य पर कोई दूसरा राजा तो आक्रमण की तैयारी तो नहीं कर रहा है? राज्य में धन-धान्य पर्याप्त हो रहा है या नहीं? राज्य में चोर, लुटेरे आदि अपराध तो नहीं कर रहे हैं? इत्यादि बातों पर राजा का कोई ध्यान नहीं था। वह राजा जब स्वयं राज्यभार संभालने का समय नहीं निकाल पा रहा था, तो उसने अपने एक मंत्री 'काष्ठांगार' को राज्य का संचालन सौंपने का मन बनाया।

तभी राजनीति में कुशल, राजा का हित चाहने वाले, उम्र में बहुत बड़े, अनुभवी, कुल-परम्परा से चले आ रहे मंत्रियों ने राजा से विनयपूर्वक निवेदन किया-'हे राजन्! आपको राजकार्य स्वयं देखना चाहिए। आपको अपने मंत्री पर भी अधिक विश्वास नहीं करना चाहिए। आप राजा हैं इसलिए प्रजा की चिन्ता करना आपका प्रथम कर्त्तव्य है। राजा यदि स्त्री में अधिक मोहित होता है तो उसका विनाश उसी तरह हो जाता है, जैसे सीता में मोहित होने से रावण का विनाश हुआ था। आपको धर्म, अर्थ, काम इन तीनों पुरुषार्थों पर बराबर ध्यान देना चाहिए। एक भी पुरुषार्थ की कमी होने पर अनेक आपत्तियाँ सामने आ जाती हैं। हम लोगों ने अतिविनम्रता से आपके पारम्परिक स्नेह के कारण ये यह बात कही है। आप कृपा कर हम वृद्ध मंत्रियों की इस बात पर अवश्य ध्यान दें। प्रणाम राजन्! प्रणाम।'

राजा ने कामासक्ति के कारण अपने हितकारी पितातुल्य मंत्रियों की बात को सुनकर भी अनसुना कर दिया। धीरे-धीरे राजा के इस व्यवहार से राज्य के हितकारी उन मंत्रियों को दु:ख होने लगा। उन्हें

राज्य पर संकट आने का भय दिख रहा था। प्रजा भी मनमानी करने लगी। रोज नए-नए अपराध होने लगे। राजा के अंकुश के बिना सभी मनचाहा स्वछन्द आचरण करने लगे। पाँचों पाप और सप्त व्यसनों से प्रजा में पाप बढ़ने लगा। राजा ने तभी अपना राज संचालन का कार्य 'काष्ठांगार' मंत्री को सौंप दिया। सत्य ही है-

बुद्धिः कर्मानुसारिणी॥क्ष.चू. १/१९॥

अर्थात् बुद्धि कर्म के अनुसार चलती है।

प्रश्न 1. राजा का कर्त्तव्य क्या है?

उत्तर : 1. राज्य के संचालन पर ध्यान देना। 2. किसी पर भी अतिविश्वास नहीं करना। 3. प्रजा के हित के लिए तत्पर रहना। 4. तीनों पुरुषार्थों में बराबर यथायोग्य समय लगाना।

प्रश्न 2. तीन पुरुषार्थ कौन से हैं?

उत्तर : धर्म, अर्थ, काम।

प्रश्न 3. पुरुषार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर : आत्मा के लिए करने योग्य हितकर कार्य पुरुषार्थ कहलाता है।

प्रश्न 4. क्या पुरुषार्थ तीन ही होते हैं?

उत्तर : नहीं, पुरुषार्थ चार होते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

प्रश्न 5. फिर यहाँ तीन पुरुषार्थ क्यों कहे?

उत्तर : गृहस्थ-जीवन में मनुष्य के लिए तीन पुरुषार्थ होते हैं और साधु जीवन में चतुर्थ पुरुषार्थ मोक्ष होता है। इसलिए यहाँ तीन ही पुरुषार्थ कहे हैं।

प्रश्न 6. इन पुरुषार्थों की परिभाषा क्या है?

उत्तर : 1. **धर्म पुरुषार्थ-** प्रत्येक व्यक्ति को नित्य भगवान् का दर्शन-पूजन करना, मुनि-आर्यिका आदि धर्मात्माओं की भक्तिपूर्वक

सेवा करना और नित्य दान करते हुए संयम, स्वाध्याय से जीवन जीना धर्म पुरुषार्थ है।

2. **अर्थ पुरुषार्थ-** प्रत्येक पुरुष को अपना घर, परिवार चलाने के लिए और धन अर्जित करने के लिए व्यापार, नौकरी, खेती आदि करनी होती है, वह अर्थ पुरुषार्थ है।

3. **काम पुरुषार्थ-** अपनी इन्द्रियों के पोषण के लिए भोग- उपभोग की सामग्री रखना काम पुरुषार्थ है। युवावस्था में अपनी विवाहित स्त्री से पुत्र प्राप्ति के लिए पुरुषार्थ करना भी काम पुरुषार्थ है।

4. **मोक्ष पुरुषार्थ-** सभी इन्द्रियों के विषयों का त्याग करके आत्मा से कर्मों का नाश करने के लिए व्रत, तप, त्यागमय जीवन जीना मोक्ष पुरुषार्थ है।

प्रश्न 7. तो क्या इन पुरुषार्थों पर हम गृहस्थ या विद्यार्थियों को भी ध्यान देना चाहिये?

उत्तर : अवश्य देना चाहिए। विद्यार्थी जीवन में धर्म के साथ चलना चाहिये। विद्यार्थी जीवन में अपनी पढ़ाई पर ही ध्यान देना आपका अर्थ पुरुषार्थ है। अच्छे-अच्छे शुद्ध पौष्टिक भोजन करना, अच्छे कपड़े पहनना और सुख-साधनों से रहना विद्यार्थी का काम- पुरुषार्थ है। जब विद्यार्थी की शिक्षा पूर्ण हो जाए तो व्यवसाय से धन कमाना अर्थ पुरुषार्थ है और विवाह करके सुखमय जीवन बिताना काम पुरुषार्थ है। इस तरह आयु के अनुसार पुरुषार्थ करना चाहिए।

प्रश्न 8. सत्यन्धर राजा का सबसे बड़ा दुर्गुण क्या था?

उत्तर : धर्म, अर्थ पुरुषार्थ को छोड़कर मात्र काम पुरुषार्थ में मग्न रहना ही उसका बड़ा दुर्गुण था।

प्रश्न 9. काम पुरुषार्थ की अधिकता से राजा को क्या हानि हुई?

उत्तर : यह आगे बताया जाएगा। किन्तु सबसे बड़ी हानि यह हुई कि अपना हित चाहने वाले, अपने से बड़ों की बात नहीं मानना और अपनी मनमानी करना।

प्रश्न 10. इस प्रसंग से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

उत्तर : 1. हमें हमेशा धर्मबुद्धि के साथ कार्य करना चाहिए। 2. अपने से बड़ों की (माता-पिता-गुरु-शिक्षकों की) बात माननी चाहिए। 3. स्त्री या पुरुष से अधिक आसक्ति नहीं रखनी चाहिए।

(3)

एक दिन रात्रि के अन्तिम प्रहर में विजया रानी ने तीन स्वप्न देखे। पहले स्वप्न में उसने एक विशाल अशोक वृक्ष देखा। तत्पश्चात् स्वप्न में उस वृक्ष को नष्ट होते देखा। दूसरे स्वप्न में एक छोटे अशोक वृक्ष को देखा जिसके शिखर का अग्रभाग स्वर्णमुकुट से शोभित है। तीसरे स्वप्न में उस अशोक वृक्ष को देखा जिसकी शाखाओं पर आठ मालाएँ लटक रही हैं। इन स्वप्नों को देखकर रानी के मन में कुछ हर्ष और कुछ विषाद उत्पन्न हुआ। उसी क्षण उसकी निद्रा टूट गई। प्रातः रानी ने उन स्वप्नों को राजा को बताया और उनका फल पूछा।

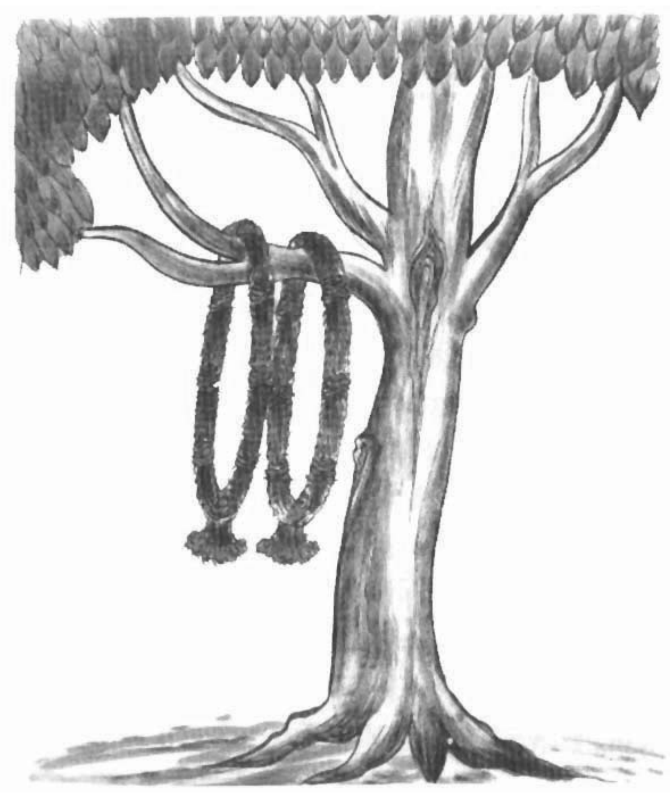

अस्वप्नपूर्वं हि जीवानां न हि जातु शुभाशुभम्॥क्ष.चू./१/२१॥

निश्चय से मनुष्यों के लिये स्वप्न के बिना कभी भी शुभ-अशुभ कार्य नहीं होता है।

राजा ने पहले स्वप्न का फल अमंगल रूप समझ लिया, फिर भी राजा ने वह बात छिपाते हुए कहा-देवी! अशोक वृक्ष के ऊपर स्वर्णमुकुट लगा है, यह स्वप्न कह रहा है कि तुम्हारे पुत्र रत्न होगा। यह पुत्र बहुत समय से की जाने वाली जिनेन्द्र भगवान् की पूजा का फल है। आठ लाभों को पाकर वह पुत्र पृथ्वी को भोगने वाला अर्थात् राजा होगा। यह सूचना आठ शाखाओं पर लटकती हुई आठ मालाओं से ज्ञात होती है।

रानी अन्तिम दो स्वप्न-फलों को सुनकर हर्षित हुई, फिर भी रानी ने पूछा-'वृक्ष का पतन क्या कह रहा है।' राजा ने उसे इस विषय में निश्चिन्त होने को कहा, फिर भी रानी जब नहीं मानी तो राजा ने कहा-'यह स्वप्न मेरे लिए अमंगल का सूचक है।' इतना सुनते ही रानी घबराकर मूर्च्छित हो गई। जैसे-तैसे उपचार करके रानी जागृत हुई। राजा ने उसे समझाया-

'अरे कल्याणवती! तुम जिनेन्द्र भगवान् की आराधना करती हो। तुम्हें इस तरह घबराना नहीं चाहिए। जीव को सभी संयोग-वियोग अपने-अपने कर्म के फल से मिलते हैं। जो होना है, वह होकर ही रहता है। जो नहीं होना है, वह कभी नहीं होता है। धूप और छाया की तरह दु:ख-सुख आते रहते हैं। विपत्ति में भी धर्माराधना करने वाला धर्म में दृढ़ होता है। जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों की पूजा और मुनिश्वरों को दान, धर्म से प्राप्त आशीर्वाद सभी आगामी विपत्तियों को शान्त कर देता है। कर्म के फल में दु:खी तो विवेकशून्य लोग होते हैं। अत: तुम्हें व्याकुल नहीं होना चाहिए।'

इन वचनामृतों से रानी का मन कुछ सन्तुष्ट हुआ। वह थोड़ी चिन्तित रहते हुए भी सामान्य हो गई।

प्रश्न 1. रानी ने कितने स्वप्न देखे?

उत्तर : रानी ने तीन स्वप्न देखे।

प्रश्न 2. वे तीन स्वप्न और उनका फल क्या था?

उत्तर : 1. अशोक वृक्ष गिर पड़ा, जो राजा के लिए अमंगल था। 2. अशोक वृक्ष पर स्वर्ण मुकुट लगा था, जो राजपुत्र का जन्म कहा रहा था। 3. उस वृक्ष पर आठ मालायें थीं, जो आठ लाभों से राजा बनेगा, यह कह रहा था।

प्रश्न 3. क्या स्वप्न के फल सत्य होते हैं?

उत्तर : सामान्यरूप से स्वप्न निष्फल होते हैं। किन्तु कभी कभी विशिष्ट स्वप्न आगे की होनहार बताने वाले भी होते हैं। शुभ तिथि में रात्रि के अन्तिम प्रहर में अर्थात् सुबह 3 बजे से 6 बजे तक देखे गए स्वस्थ मनुष्य के स्वप्न निश्चित ही फलदायी होते हैं।

प्रश्न 4. क्या ऐसा कभी हुआ है?

उत्तर : हाँ बेटा! प्रत्येक तीर्थंकर के गर्भ में आने से पहले माता को सोलह स्वप्न नियम से आते हैं, जो सत्य होते है। इसी प्रकार अन्य महापुरुषों के जन्म से पहले माँ को स्वप्न आते हैं।

प्रश्न 5. तो क्या तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के स्वप्न ही सच होते हैं?

उत्तर : नहीं, सुनो! गिरनार पर्वत पर आचार्य श्री धरसेन के पास जब दो मुनिराज आ रहे थे तो उन्हें स्वप्न में दो सफेद ऊँचे-ऊँचे बैल दिखाई दिये और उस स्वप्न का फल जानकर आचार्य देव ने कहा 'जयउ सुय देवता' अर्थात् श्रुतदेवता जयवन्त हों। उस स्वप्न के फल से आचार्य श्री धरसेन ने दोनों मुनिराज का आगमन

व योग्यता जानकर ज्ञान दिया। उन्होंने सर्वप्रथम ग्रन्थ रचना की, जिसे 'षट्खण्डागम सूत्र' कहते हैं। इन दोनों मुनिराज का नाम आचार्य पुष्पदन्त और भूतबली था।

प्रश्न 6. ये मुनिराज कब हुए थे?

उत्तर : ईसा की पहली शताब्दी में।

प्रश्न 7. तो क्या अभी भी ऐसा होता है?

उत्तर : हाँ! विद्याधर का जन्म होने से पहले उनकी माँ श्रीमति को दो मुनिराज आकाश में जाते हुए दिखाई दिये थे। यही विद्याधर बड़े होकर आचार्य विद्यासागर बने, जो वर्तमान में हैं।

प्रश्न 8. क्या सभी स्वप्न जन्म के समय के ही सच होते हैं, बाद में नहीं?

उत्तर : ऐसा नहीं है। मुझे (मुनि प्रणम्यसागर को) घर पर रहते हुए दो आचार्यों के एक साथ हँसते हुए दर्शन हुए थे। बाद में जब मुझे वैराग्य हुआ तो दोनों का लाभ हुआ। वह स्वप्न फलित हुआ, जिसमें आचार्य विद्यासागर जी महाराज का दर्शन पहले स्वप्न में हुआ, बाद में साक्षात् दर्शन हुआ।

प्रश्न 9. अमंगलकारी स्वप्नों को देखने के बाद क्या करना चाहिये?

उत्तर : अशुभ स्वप्न आने पर भगवान् जिनेन्द्र देव की भक्ति मन लगाकार करनी चाहिये। भक्तामर स्तोत्र, कल्याणमन्दिर स्तोत्र, वर्धमान स्तोत्र आदि का पाठ, णमोकार महामन्त्र का जप, भगवान् का पूजन-विधान निरन्तर करने से भी अमंगल स्वप्न अशुभकारी नहीं होते।

(4)

स्वप्न का फल दिखाई देने लगा। रानी के गर्भ में एक पुत्र वृद्धि को प्राप्त होने लगा। राजा ने जब पुत्ररत्न के फल को सच होते देखा तो उसे अपने अमंगल की चिन्ता और बढ़ गयी। वह पुत्र की रक्षा करना चाहता था, इसलिए अकस्मात् आई विपत्ति से रक्षा करने के लिए राजा ने एक कुशल कारीगर से 'मयूरयन्त्र' विमान बनवाया। इधर रानी को 'क्रीड़ावन' में घूमने की इच्छा हुई। कुशल कारीगर ने कुछ ही दिनों में 'मयूरयन्त्र' को तैयार कर दिया। राजा मयूरयन्त्र पर रानी को बिठाकर वनों में घूमने लगा।

इधर मंत्री 'काष्ठांगार' सोचने लगा कि यह राज्य तो मुझे अभी कुछ समय के लिए मिला है। राजा जिस दिन चाहेगा, मुझे सिंहासन से उतार देगा। मेरे जैसे लोगों को दूसरे का कृपापात्र होना शोभा नहीं देता। दूसरों की आज्ञा पालन कर जीवित रहना तो नौकर के समान अपयश का कारण है। भला, परतन्त्रता में भी कभी सुख और निश्चिन्तता मिली है? यद्यपि धर्मदा जैसे न्यायप्रिय, विवेकी व राजहितैषी मंत्री ने काष्ठांगार को राजद्रोह न करने की मंत्रणा दी थी परन्तु राज्य लोलुपी काष्ठांगार ने इसके विपरीत विचार किया, बुद्धिमान लोग अपने हाथ में आए हुए रत्न को कोई छीन न ले, ऐसा भय नहीं पालते बल्कि उस रत्न का स्वामी स्वयं बनते हैं। मैं भी इस पृथ्वी को अपने ही पराक्रम से अपने अधीन करूँगा। इस संसार में कोई किसी का सगा नहीं है। सब स्वार्थ के ही तो सम्बन्ध हैं।

राजा सत्यन्धर के पुरोहित 'रुद्रदत्त' ने अपने निमित्तज्ञान से भविष्य की बात जानकर 'काष्ठांगार' को बताया कि इस रानी के गर्भ में जो पुत्र है वह तेरी मृत्यु का कारण बनेगा। मेरी भविष्यवाणी कभी भी असत्य नहीं होती। काष्ठांगार ने सोचा राजा सत्यन्धर के रहते हुए

मैं इसकी रानी और पुत्र को, जो मेरे प्राणों के लिए बड़ा कण्टक है कैसे मार सकता हूँ? राजा को मारने से ही मेरे संकट और कण्टक दूर होंगे, क्योंकि वृक्ष के नष्ट हो जाने पर उससे लिपटी बेल और उसके फूल कहाँ बचेंगे?

ऐसा विचारकर उसने कुछ मंत्रियों और सामन्तों को अपना अभिप्राय बताया। यह विचार सुनते ही कुछ तो डर गए, किसी ने इसे अन्याय कहा। काष्ठांगार ने अपने से असन्तुष्ट उन सभी लोगों को मरवा दिया। उसके साले 'मथन' ने काष्ठांगार की योजना को सराहा।

अपने साले के सहयोग से 'काष्ठांगार' ने राज्य के खजाने से धन देकर दो हजार राजाओं को अपने अधीन कर लिया। पड़ौसी राजाओं के साथ वह युद्ध के लिए राजमहल की ओर चल पड़ा। राजा को जब यह ज्ञात हुआ, तो रानी विजया को मयूरयन्त्र में बिठाकर कहा कि 'इस समय तुम्हारा अकेला ही इस विमान में घूमना उचित है। तुम्हें जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलों की सौगन्ध है, मेरी बात मान लो।' और राजा ने स्वयं ही उस विमान को घुमा दिया। वह मयूरयन्त्र क्षणभर में ही रानी को लेकर उड़ गया।

राजा अकेला ही अपनी तलवार को लेकर बाहर निकला। राजा की ललकार सुनकर और उसका पराक्रम देखकर बहुत से राजा लोग काष्ठांगार को छोड़कर सत्यन्धर राजा के साथ हो गये। काष्ठांगार की सेना भागने लगी। स्वयं काष्ठांगार भी भयभीत होकर हारता दिखा। उसी समय काष्ठांगार का पुत्र कालांगारिक अपनी और अधिक सेना लेकर आ पहुँचा। उसकी सहायता से काष्ठांगार साहस से भर गया। बड़ी निर्दयता से उस कृतघ्न मंत्री और उसके पुत्र ने अनेक रथ, घोड़े, हाथियों को खण्ड-खण्ड कर दिया और नरसंहार करने लगे। इधर राजा सत्यन्धर की तलवार भी उन घोड़ों, हाथियों और निरपराध मनुष्यों पर पड़कर भोथरी हो गई। तभी राजा सत्यन्धर के मन में सहसा विचार आता है-कि इन निरपराध मनुष्यों के साथ ऐसी निर्दयता करने से तेरा कौन सा भला होगा? हे आत्मन्! तूने विषयासक्ति के दोष का यह भयानक फल देख लिया है। अब तो इन राज्य और विषयों की आसक्ति को छोड़ दे। ऐसा विचार करते हुए राजा सत्यन्धर विरक्त हो गया और समस्त परिग्रह का त्याग कर जिनेन्द्र भगवान् के चरणकमलों का और बाहुबली के चरित्र को सहसा याद करने लगा। राजा ने यह पृथ्वी काष्ठांगार के लिए छोड़ दी। मंत्री ने निःहत्थे राजा पर तलवार चला दी और राजा सत्यन्धर स्वर्ग लोक में जाकर क्षणभर में सुखी हो गया।

स्वयं त्याज्यास्तथा हि स्यान्मुक्तिः संसृतिरन्यथा॥क्ष.चू. १/६८॥

यदि विषयभोग स्वयं छोड़ दिये जायें तो मुक्ति है, अन्यथा संसार मिलता है।

प्रश्न 1. हमें राजा सत्यन्धर के इस प्रसंग से क्या सीख लेनी चाहिये?

उत्तर : 1. विपत्ति में भी पुरुषार्थहीन नहीं होना चाहिए। राजा सत्यन्धर ने अपने लिए अमंगल जानते हुए भी अपनी पत्नी और पुत्र को बचाने की योजना बना ली, यह उसका क्षत्रियपना है।

2. सत्यन्धर ने अकेले ही तलवार लेकर युद्ध करना प्रारम्भ किया। कई राजा उसके साथ हो गये। उसने शत्रु सेना को पीछे हटा दिया। इसी का नाम है साहस। हमें साहस कभी नहीं छोड़ना चाहिए। जिसने साहस का दामन नहीं छोड़ा, उसे कोई हरा नहीं सकता है। वह मरकर भी अमर होता है। बेटा! जैनधर्म पालने वाला ही क्षत्रिय होता है। कभी भी यह मत सोचो कि पता नहीं अब मेरे साथ क्या होगा? परीक्षा में नम्बर कम आए तो अब मेरा आगे क्या होगा? किसी कम्पनी की जॉब में अपना चयन नहीं हुआ तो न जाने अब मेरा कॅरियर कैसे बनेगा? हमने इतनी उम्मीदों से मेहनत की, फिर भी मनचाहा फल नहीं मिला। मेरा भाग्य मेरा साथ नहीं देता, ईश्वर मेरी मदद नहीं करता। ये सब बातें निकम्में और नकारात्मक सोच रखने वाले लोगों की हैं। राजा की तरह आज भी हर व्यक्ति में ऐसा साहस और पराक्रम होना चाहिए कि उसमें हर असफलता के बाद भी सफलता का पूर्ण विश्वास जागे। भाग्य की बातें बेकार लोग करते हैं। हमेशा याद रखो– Good Luck Bad Luck Who knows. भाग्य अच्छा है या बुरा है, यह कौन जानता है? ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो हिम्मत नहीं हारते हैं। “हिम्मते मर्दा, मददे खुदा” यह कहावत ऐसे राजपुरुषों के लिए ही आयी है। ऐसे क्षत्रिय वीर राजाओं से जैनपुराण भरे हुए हैं। नेपोलियन और सिकन्दर जैसे लोग तो बहुत बाद में हुए, किन्तु जीवन का अन्त सुधारना वे भी नहीं जानते थे। ये लोग विजयी तो हुए, किन्तु आत्मविजयी नहीं हुए। इन राजाओं के सामने भी ऐसी परिस्थितियाँ आई थीं, तब उन्होंने हिम्मत से सेना को आगे बढ़ाया था।

नेपोलियन ने अपने सैनिकों से कहा था–“एल्प्स पर्वत है ही नहीं” और उसके सैनिक पर्वत को पार कर गए।

सिकन्दर ने कहा था–“सिंधु है ही नहीं।” और उसके सैनिक सिन्धु नदी पार कर गये थे।

3. सत्यन्धर ने अपना अन्त सुधार लिया। क्षत्रिय जैन वीर मरते मरते भी सर्वस्व त्याग करने की क्षमता रखता है, यही उसकी आत्मविजय है।

इस तरह पुरुषार्थी, साहसी और आत्मविजयी ये तीन गुण प्रत्येक पुरुष में होने चाहिए, तभी जीने का आनन्द है और मरने का आनन्द है।

प्रश्न 2. क्या 'काष्ठांगार' का साहस प्रशंसनीय नहीं है?

उत्तर : नहीं, काष्ठांगार का यह साहस नहीं किन्तु कृतघ्नता की चरम सीमा पर पहुँचा दुस्साहस है। हमें कभी भी अपने ऊपर उपकार करने वाले का बुरा नहीं सोचना चाहिए। हमें जो भी मिला है, उसके प्रति कृतज्ञता का भाव बनाना चाहिए।

प्रश्न 3. क्या उस समय भी 'मयूरयन्त्र' जैसे विमान बनते थे?

उत्तर : हाँ! विज्ञान और अनुसन्धान पहले भी पूर्ण विकसित था। इतना अवश्य है कि यह विज्ञान किन्हीं विशिष्ट पुरुषों के पास होता था और विशिष्ट परिस्थिति में काम आता था। विमान बनाने का आविष्कार भगवान् महावीर के समय पर भी था। भारत में अठारहवीं शताब्दी तक ज्ञान-विज्ञान चरम सीमा पर था, विकसित था। अंग्रेजों ने इस विज्ञान को भारत से सीखा और अपना बना लिया।

सुनो! जब सन् 1799 में टीपू सुल्तान युद्ध में मारा गया था, तब अंग्रेजों की सेना ने 700 से ज्यादा रॉकेट पकड़े थे। उस समय उन्होंने 900 रॉकेटों की उपप्रणालियाँ पकड़ी थी। उसकी सेना में 27 ब्रिगेड थी, जिन्हें 'कुशून' कहा जाता था। इन रॉकेटों को बाद में विलियम कोग्रेव इंग्लैण्ड ले गया था और इस तरह से ये ब्रिटेन के हो गए। उस समय कोई गैट, आई.पी.आर. एक्ट या पेटेंट कानून नहीं था। इस तरह टीपू सुल्तान की मौत के साथ ही भारतीय रॉकेट

भी खत्म हो चुके थे। फिर लगभग 150 साल बाद 20वीं सदी में भारतीय रॉकेटों के विकास का क्रम खोजा गया।

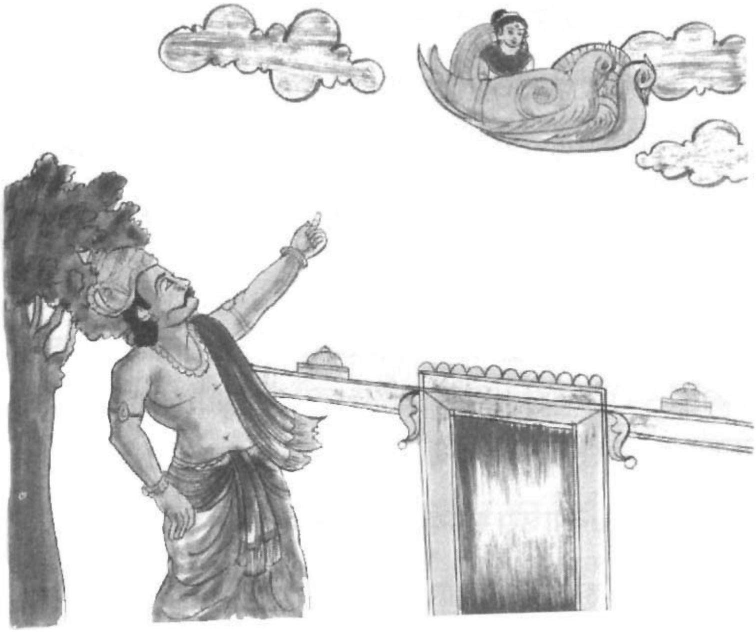

(5)

उधर विजया रानी मयूर–यन्त्र पर बैठकर श्मशान–भूमि में जा पहुँची। उस विमान ने रानी को वहीं श्मशान पर गिरा दिया। उसी रात रानी ने पुत्र उत्पन्न किया। पुत्र प्रसूति के बाद रानी को हर्ष से ज्यादा खेद था। वह शोक में अकेली ही रो रही थी। पुत्र को गोद में रखकर, उसे देख–देखकर भाग्य की विडम्बना को कह रही थी–आज यह पुत्र यहाँ श्मसान में उत्पन्न हुआ है। यदि राजमहल में हुआ होता तो अभी धायें पुत्र–उत्पत्ति का समाचार सुना–सुनाकर राजा से बहुत सारा पुरस्कार लेती। चारों ओर प्रजाजनों में अपार उल्लास और आनन्द छा गया होता। बड़े–बड़े सामन्त, सेठ, मुखिया राजा को और मुझको बधाई देने आ रहे होते। चारों ओर राजमहल में नगाड़े, बाजे, शंखों और बांसुरियों की ध्वनि हो रही होती। अपनी–अपनी मुट्ठियों में गुलाल, केसर के रंग भरकर सबके मुख लाल–पीले हो रहे होते। अन्तःपुर में रहने वाली रानियाँ बालक को अपनी–अपनी गोद में लेने को लालायित हो रही होती।

राजा आदेश देते कि आज पूरे राज्य में मिठाइयाँ, कपड़े, रुपये, धान्य आदि सभी सामग्री वितरित कर दो। पूरा राजमहल दीपक और रत्नों के प्रकाश से जगमगा रहा होता। किवाड़ खोलकर मुक्त हस्त से खजाना लुटाया जा रहा होता। सेठ, सामन्त, सुन्दर हार, अंगूठी और अपार धन भेंट देने के लिए थाल भर-भरकर ला रहे होते। जिनालयों में महापूजन किया जाता। जहाँ विशिष्ट-विशिष्ट मनुष्यों से 'स्वस्तिवाचन' करने के लिए पहले राजमहल में पहुँचने की होड़ लग रही होती। सभी ज्योतिषी अपनी-अपनी कुण्डली बना-बनाकर लाकर राजा को पुत्र के भविष्य की सूचना दे रहे होते। राजा और मुझ समेत इस बालक की ही दूर-दूर तक चर्चा-वार्ता हो रही होती।

हे पुत्र! तेरा कैसा भाग्य है जो आज ही एक दिन में शुभदिन दुर्दिन में बदल गये। इधर चारों ओर मरघटों पर लोग शवों को जलता हुआ छोड़ गये हैं। इस रात्रि में जहाँ अमांगलिक शब्द ही सुनाई देते हैं। कुक्करों और सियारों की आवाज सुनकर लोग डर रहे हैं। चारों

ओर माँस और हड्डी की दुर्गन्ध फैली है। तीखी हवा चल रही है। कोई बन्धु, कोई अपना, कोई प्रेमीजन नहीं है। हे भगवन्! मेरे प्राण ही क्यों नहीं निकल जाते, जो आज मैं इस दुर्भाग्य को देख रही हूँ। अरे राजपुत्र! मैं तेरे लिए क्या करूँ? मैं किससे क्या कहूँ? कुछ भी समझ नहीं आ रहा। हाय! बेटा! तेरा लालन-पालन कैसे होगा? उस दुष्ट मन्त्री की नजरों से तुझे कैसे बचाऊँगी?

इस प्रकार के शोक और सन्ताप से विलाप करते हुए रानी ने पूरी रात व्यतीत कर दी। तभी एक यक्षी देवी ने आकर रानी को सांत्वना दी और कहा–'थोड़ा धैर्य रखो। यह पुत्र बहुत ही पुण्यशाली और प्रतापी है, सुबह सब ठीक हो जाएगा। यह चरमशरीरी पुत्र है। इसके लालन-पालन की चिन्ता मत करो। काष्ठांगार की भस्म बनाने के लिए तुम्हारा पुत्र धधकती अग्नि के समान प्रतापी और पराक्रमी होगा।'

सुबह होते ही एक बहुत बड़ा व्यापारी अपने मृत पुत्र को लेकर श्मसान आया। उस वणिक् के जो भी पुत्र होता था, मरण को प्राप्त हो जाता था। उस व्यापारी (वैश्यपति) को एक बार श्री शीलगुप्त मुनिराज ने बताया था कि तुम्हें श्मशान में एक दीर्घायु पुत्र मिलेगा। उसके पालन के बाद ही तुम्हारी सन्तान जीवित रहेगी। वह व्यापारी 'गन्धोत्कट' नाम से प्रसिद्ध था। उसने जब श्मशान में पुत्र रोने की आवाज सुनी तो उसकी दृष्टि पुत्र की ओर गयी। सत्य ही कहा है–

पुण्ये किं वा दुरासदम् ॥क्ष.चू.१/८९॥

अर्थात् पुण्य के उदय में क्या दुर्लभ है?

इससे पहले रानी ने पुत्र को छाती से लगाकर दूध पिलाया और उसके हाथ में राजा के नाम की अंगूठी पहनायी और जिनेन्द्र भगवान् को प्रणामपूर्वक कहा–'हे भगवान्! इसकी रक्षा करो, जिनशासन के प्रभावक देव भी इसकी रक्षा करें।' रानी वृक्ष की आड़ में पुत्र छोड़कर छिप गई।

सेठ गन्धोत्कट ने जब राजकीय लक्षणों से युक्त देह वाले पुत्र को देखा तो उसके हर्ष का ठिकाना न रहा, मानों किसी गरीब को कोई दुर्लभ रत्न मिल गया हो। सेठ ने आनन्द के साथ पुत्र को दोनों हाथों से उठाया। उठाते ही उस कुमार ने छींका और उसी समय आकाश में 'जीव, जीव' (जीवित रहो)–यह ध्वनि सुनाई दी। उस वैश्यपति ने उसी समय उस राजपुत्र का 'जीवक' नाम रखने का संकल्प कर लिया। शीघ्र ही अपने घर लौटकर बनावटी क्रोध से पत्नी को डाँटते हुए कहा–'तूने जीवित पुत्र को मृत कैसे कह दिया'। सेठ की पत्नी सुनन्दा पुत्र को जीवित देखकर बड़ी खुश हुई। सच कहा है–

प्राणवत् प्रीतये पुत्राः॥क्ष.च. १/९९॥

पुत्र प्राणों की तरह प्रीति के लिए होते हैं।

प्रश्न 1. इतने पुण्यात्मा जीव को भी पाप के उदय से श्मशान में जन्म लेना पड़ा। ऐसा क्यों? फिर इन्हें पुण्यात्मा क्यों कहें?

उत्तर : नहीं बेटा! इस संसार में पुण्य–पाप का मिला जुला फल सबको मिलता है। कोई भी मनुष्य एकान्त से सभी प्रकार के पुण्यलाभ नहीं कर पाता है। महापुरुषों के इस प्रसंग को पढ़कर हमें यह सीखना चाहिए कि ऐसे पुण्यात्मा पुरुषों का जीवन भी जन्म से कष्टमय रहा है तो हमें भी कष्ट से लड़ने का साहस रखना है। आत्मा में अनेक प्रकार के कर्म होते हैं। पूर्व जन्म में पुण्यबन्ध के साथ कभी अन्तराय कर्म का बंध किया हो तो उसके कारण दुःख भी मिलता है। दूसरे, साता आदि पुण्य कर्म के फल से सुखसाधन वैभव भी मिलता है। यह मनुष्य पर्याय पुण्य–पाप के संयोग से ही चलती है।

प्रश्न 2. तो इसका मतलब यह हुआ कि 'जीवक' ने पूर्व जन्म में अन्तराय कर्म का बन्ध किया। क्या आप बतायेंगे, किस कारण से अन्तराय कर्म का बन्ध हुआ?

उत्तर : हाँ बेटा, हाँ! पूर्व भव में इस जीव ने एक हंस के बच्चे को उसके माता-पिता के पास से पकड़वा लिया था। उस हंस के बच्चे का पिता दु:ख से रो-रोकर आकाश में क्रेंकार करता रहता था। उसकी आवाज से परेशान होकर उस हंस-पिता को मरवा दिया। बाद में जब उस जीव के पिता को जानकारी मिली, तो उनके कहने पर उस हंस के बच्चे को उसकी माँ के पास सोलह दिन बाद पहुँचा दिया। उस अन्तरायकर्म का उदय जीवक को इस पर्याय में भोगना पड़ा।

दृष्टान्ते हि स्फुटा मतिः॥क्ष.चू. १/८६॥

दृष्टान्त सामने हो तो बुद्धि स्पष्ट हो जाती है।

प्रश्न 3. फिर तो सोलह दिन बाद जीवक की माँ भी मिल जाएगी?

उत्तर : कुछ नहीं कह सकते बेटा! इन कर्मों का बंध कितने समय का हुआ और कब तक इनका फल मिलता है, यह आगे की कथा सुनकर तुमको ज्ञात होगा।

प्रश्न 4. जब सेठ पुत्र को ले जाने लगा, तो माँ विजयारानी छिप क्यों गयी?

उत्तर : ताकि वह सेठ यह पहचान न ले कि यह राजा सत्यन्धर का पुत्र है और रानी ने यह भी सोचा कि सेठ मुझे देखेगा तो फिर मुझे भी घर ले जाने का विचार करेगा या फिर पुत्र के साथ माँ को देखकर वह पुत्र का निश्चिन्तता से पालन नहीं कर पाएगा, यह विचार करके माँ वृक्ष के पीछे छिप गई।

प्रश्न 5. उस समय 'जीव-जीव' यह आवाज कहाँ से आयी?

उत्तर : यह आवाज माँ विजया की ही थी। मानो उनका आशीर्वाद था।

प्रश्न 6. जब गन्धोत्कट अपनी पत्नी के पास पुत्र लेकर पहुँचा तो उसने सच-सच अपनी पत्नी को क्यों नहीं कहा?

उत्तर : यह विचार करके कि यदि सुनन्दा इसे पराया पुत्र समझेगी तो इसका ठीक से लालन-पालन नहीं करेगी और वह भी हृदय से खुश नहीं रहेगी। इसी आशंका से गंधोत्कट ने सुनन्दा को पुत्र के विषय में सच-सच नहीं कहा।

प्रश्न 7. जानते हो! इस प्रसंग से हमें क्या शिक्षा मिली?

उत्तर : यही कि हमें कभी किसी पशु-पक्षी के बच्चों को उसके माता-पिता से दूर नहीं करना चाहिए और किसी भी पशु-पक्षी को कंकड़, पत्थर या गुलेल आदि से नहीं मारना चाहिए।

प्रश्न 8. लेकिन हमने सुना है कि तुम तो कुत्ते की पूँछ में पटाखा बांधकर जलाते हो और हँसते हो?

उत्तर : आज से मैं संकल्प लेता हूँ कि किसी जीव को नहीं सताऊँगा।

प्रश्न 9. विजया माँ अपने भाई के घर भी क्यों नहीं गई?

उत्तर : 1. विपत्ति के समय पराश्रित रहना उसे उचित नहीं लगा, इसीलिए अपने स्वाभिमान और आत्मगौरव की रक्षा करने के लिए ऐसा नहीं किया।

2. कहीं दूर किसी दूसरे वेष में रहेगी तो काष्ठांगार को उसका पता नहीं चलेगा। अन्यथा मेरा (माँ का) पता चल जाने पर उसे किसी पुत्र के विषय में संशय बना रहेगा और उसके नाश का प्रयत्न करेगा।

(6)

वैश्यपति गन्धोत्कट ने अपने घर पुत्र के जन्म का उत्सव मनाया। गन्धोत्कट ऊपर-ऊपर से काष्ठांगार राजा से भी मिलता रहा। गन्धोत्कट ने राजा से कहा कि इस समय नगर में जितने भी बालक उत्पन्न हुए हों, उन सबका हमारे ही घर में लालन-पालन हो। काष्ठांगार इस बात से खुश हुआ कि गन्धोत्कट हमारे राज्य की प्राप्ति से खुश है, इसलिए अपने राजमहल का खजाना उसके लिए खोल दिया। राजा सत्यन्धर की पट्टरानी 'विजया' थी। उनके दो और रानियाँ थीं। उन रानियों के दो पुत्र थे। उन रानियों ने धर्म का स्वरूप सुनकर श्राविका के व्रत ग्रहण कर लिये थे। वे दोनों पुत्र भी उसी एक घर में बड़े होने लगे। इसके साथ ही सेनापति, पुरोहित, श्रेष्ठी और मन्त्री के पुत्र भी एक साथ रहने लगे। उस गन्धोत्कट ने सातवें दिन उस पुत्र का नामकरण संस्कार करके उसका पहले से ही संकल्पित नाम 'जीवक' या 'जीवन्धर' रख दिया।

जीवन्धर अपने ही भाइयों और अपने पिता के सहयोगी मन्त्रियों आदि के पुत्र के साथ वृद्धिंगत होने लगे।

भाग्ये जागृति का व्यथा।। क्ष.चू. १/१०९।।

अर्थात् भाग्य के जागृत होने पर कौन सी पीड़ा हो सकती है?

एक दिन जीवन्धर कुमार अपने साथियों के साथ गोली, बंटा खेल रहे थे कि इतने में एक तपस्वी ने आकर पूछा कि 'यहाँ से गाँव कितनी दूर है?' तपस्वी का प्रश्न सुनकर जीवन्धर कुमार ने उत्तर दिया कि आप तो वृद्ध होकर भी अज्ञानी हैं? भला! बालकों की क्रीड़ा देखकर कौन नहीं जान लेगा कि गांव पास ही है। जीवन्धर की वाक्पटुता से तपस्वी बहुत प्रसन्न हुआ और समझ गया कि यह राजवंश का कोई उत्तम वीर बालक है। फिर भी उस बालक की

और परीक्षा करने के लिए कहा–'मुझे भोजन कराओ'। जीवन्धर ने कहा–ठीक है चलो। घर आने पर पिता से कहा–'मैं तपस्वी को भोजन कराने के लिए घर ले आया हूँ, अब आपकी जो इच्छा हो।' पुत्र की विनम्रता से गन्धोत्कट प्रसन्न हुआ। उसने कहा तुम भोजन करो। तपस्वी मेरे साथ भोजन कर लेंगे। जीवन्धर भोजन के लिए भोजनाशाला में बैठे। भोजन गर्म था। जीवन्धर रोते हुए कहने लगे कि यह भोजन गर्म रखा है। मैं कैसे खाऊँ? इस प्रकार रोकर उन्होंने माता को तंग किया। उन्हें रोता देखकर तपस्वी कहने लगा कि हे भद्र! तुझे रोना अच्छा नहीं लगता है। तू भले ही उम्र में छोटा है कि किन्तु बड़ा बुद्धिमान् और बातों में चतुर है। ऐसा सुनने पर जीवन्धर कुमार ने कहा–'हे पूज्य! क्या आप जानते नहीं हैं कि रोने में बहुत लाभ है?'

पहला, तो रोने से बहुत समय का इकट्ठा हुआ कफ निकल जाता है। दूसरा, रोने से आँखें साफ हो जाती हैं और तीसरा, गर्म

भोजन ठण्डा हो जाता है। चौथा, भूख भी खुल जाती है। पाँचवाँ, माँ प्रेम से भोजन कराती है। इस तरह रोने में अनेक गुण हैं। पुत्र की बातों से माँ प्रसन्न हुई। साधु ने भी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करके पैर धोकर बेंत की चटाई पर बैठकर विशाल पात्र में भोजन किया। पकवान को घी, मिश्री से मिलाकर खाया। अनेक दालें, बहुत सारा शाक आदि को विभिन्न प्रकार की नारियल आदि की चटनी से क्षणभर में साधु ने खा लिया। उतना सब खाने के बाद भी उसकी क्षुधा शान्त नहीं हुई। वह और भी बहुत कुछ खाने की इच्छा रखता था। जीवन्धर की आज्ञा से पुनः रसोइये ने दूध, दही, घी आदि से तैयार किए गये बहुत से खाद्य-पदार्थ उस साधु को समर्पित किए। फिर भी तापस साधु का पेट नहीं भरा। उस साधु को भोजन से अतृप्त देखकर जीवन्धर को आश्चर्य हुआ। जीवन्धर ने अपने हाथ से चावलों का एक ग्रास बहुत ही आदर के साथ उसे खिलाया। उस ग्रास को खाते ही साधु को परम तृप्ति हो गई।

अपनी पूर्व-प्रवृत्ति पर उसे बहुत लज्जा आई और जीवन्धर के पुण्य प्रताप पर आश्चर्यचकित हुआ। उस साधु ने विचार किया कि मेरी भस्मक-व्याधि को दूर करके इस बालक ने मुझ पर बड़ा उपकार किया है। अतः मैं इसके लिए प्रत्युपकार में क्या कर सकता हूँ? इस प्रकार विचार कर तपस्वी ने गन्धोत्कट से कहा–'यह बालक बहुत होनहार है, मैं इसे विद्याओं और कलाओं से अलंकृत करना चाहता हूँ।' गन्धोत्कट ने कहा-'मैं श्रावक हूँ इसलिए अन्य लिंगी साधुओं को नमस्कार नहीं कर सकता हूँ। नमस्कार के बिना आपको बुरा लगेगा। विनय के बिना विद्या कार्यकारी नहीं होगी।'

तब साधु ने कहा–नहीं श्रेष्ठिन्! मैं मिथ्यादृष्टि नहीं हूँ। सुनो! मैं सिंहपुर का राजा था। आर्यवर्मा मेरा नाम था। वीरनन्दी मुनि से मैंने धर्म का स्वरूप सुनकर सम्यग्दर्शन धारण किया। अपने पुत्र धृतिषेण का राज्य देकर मैंने दीक्षा धारण कर ली। तब मेरा नाम 'आर्यनन्दी'

हो गया। परन्तु मुझे भस्मक व्याधि हो गई, जिसके कारण मुझे तपस्वी का भेष धारण करना पड़ा।

श्रेयांसि बहुविघ्नानि॥क्ष.चू.२/१३॥

कल्याणकारी कार्यों में बहुत विघ्न आते हैं।

मैं सम्यग्दृष्टि हूँ। मैं तुम्हारा धर्मबन्धु हूँ। इस प्रकार तपस्वी के वचन सुनकर तथा उसकी परीक्षा कर गन्धोत्कट सेठ ने उन तपस्वी के लिए जीवन्धर कुमार और अन्य बालक-मित्रों को सौंप दिया। तपस्वी ने थोड़े ही समय में जीवन्धर कुमार को विद्या और कला में पारंगत कर दिया।

गुरुरेव हि देवता॥क्ष.चू.१/१११॥

निश्चय से गुरू ही देवता होता है।

प्रश्न 1. क्या गन्धोत्कट को नहीं मालूम था कि यह सत्यन्धर राजा का पुत्र है?

उत्तर : अवश्य मालूम था। तभी तो गन्धोत्कट उस राजा से ऊपर-ऊपर से मिला रहा। खजाना राजा का मिलता रहा और पालनपोषण

जीवन्धर का और उसके अपने भाई तथा मित्रों का होता रहा। गन्धोत्कट सेठ बहुत बुद्धिमान तथा दीर्घदर्शी था। यदि वह ऐसा नहीं करता तो काष्ठांगार कभी भी जीवन्धर को राजपुत्र समझ सकता था। उस सेठ ने सोचा–यदि जीवक की रक्षा अलग से की जाएगी तो भेद जल्दी प्रकट हो जाएगा। इसलिए उसने काष्ठांगार की आज्ञा से सभी बालकों को अपने घर बुला लिया और उन्हीं के साथ सब को पढ़ाया, पालन–पोषण किया। उसने यह भी सोचा होगा कि बड़े होकर ये सभी जीवन्धर के मित्र रहेंगे और वे सभी मुख्य सेना का काम करेंगे।

प्रश्न 2. वैश्यपति ने जीवन्धर का जन्मोत्सव मनाया था। क्या एक धार्मिक को ऐसा करना उचित था? जीवन्धर सम्यग्दृष्टि जन्म से हों, यह कोई पता नहीं था?

उत्तर : नहीं बेटा! पुत्र होने पर जन्मोत्सव मनाना आदिपुराण आदि ग्रन्थों से भी लिखा है। सभी पुत्रों के लिए सभी क्षेत्रों में यह उत्सव किया जाता है। इसमें सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि से कोई प्रयोजन नहीं है।

प्रश्न 3. जीवन्धर कुमार के द्वारा दिये गए एक ग्रास से तपस्वी का रोग दूर हो गया, यह कैसे सम्भव है?

उत्तर : बेटा! पुण्य का यह प्रताप है। पुण्यात्मा जीवों के दर्शन और सान्निध्य से ही बड़े–बड़े अनिष्टकारी कष्ट दूर हो जाते हैं। देखो! तीर्थङ्कर बालक 'वीर' बचपन से ही कितने पुण्यात्माा थे कि उनके दर्शनमात्र से ही दो चारण ऋद्धि मुनिराज की शङ्का का समाधान हो गया और वे उन्हें 'सन्मति' नाम देकर चले गये। बेटा! पुण्य के उदय से ही मिट्टी सोना हो जाती है, जैसे धन्यकुमार के साथ हुआ। पुण्य के उदय से अग्नि पानी हो जाती है, जैसे सीता सती के साथ हुआ। पुण्य के प्रताप से सर्प भी फूलमाला बन जाता है, जैसे सोमा सती के साथ हुआ। पुण्य से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। इसलिए पुण्य धर्म को बढ़ाते रहो।

प्रश्न 4. यह पुण्य धर्म कैसे बढ़ता है?

उत्तर : भगवान् जिनेन्द्र की भक्ति-भाव से अभिषेक व पूजन करने से, श्रेष्ठ साधुओं को नवधा भक्तिपूर्वक दान देने से, उनकी विनय और सेवा करने से तथा सदैव सभी जीवों के प्रति दया और प्रेमभाव रखने से पुण्यधर्म बढ़ता है।

प्रश्न 5. लेकिन मेरा एक मित्र है, वह कहता है कि पुण्य-पाप सब बराबर हैं। अपने को शुद्धात्मा का ध्यान करना चाहिए।

उत्तर : नहीं बेटा! पुण्य-पाप बराबर होंगे तो बताओ हिंसा करना पुण्य है या पाप? उत्तर–पाप! दया करना पुण्य है कि पाप? उत्तर–पुण्य। चोरी नहीं करना पुण्य है कि पाप? उत्तर-पुण्य। बताओ! झूठ बोलना पाप है कि पुण्य? उत्तर–पाप है। सत्य बोलना क्या है? उत्तर–पुण्य। गन्दे, कामुक चित्र देखना, बाजारू वेश्याओं की संगति करना पुण्य है कि पाप? अरे रे! यह तो बहुत बड़ा पाप है। अपनी पत्नी के साथ रहना क्या है? वह तो अच्छा है। ज्यादा परिग्रह की लालसा क्या है? पाप है और बिना परिग्रह के रहना यह पुण्य है। तो बताओ-पुण्य और पाप दोनों एक होंगे, तब तो किसी को मारना या बचाना एक हो जायेगा। फिर तो वेश्यामगमन और पत्नी संग में कोई अन्तर नहीं रहेगा। फिर तो चोरी-लूट में और साहूकारी में कोई अन्तर नहीं रहेगा। इसलिए बेटा! गृहस्थों के लिए पुण्यकार्य करना धर्म है। अच्छा बताओ! क्या केवल शुद्धात्मा का ध्यान करना चाहिये? भगवान् का पूजन, साधुसंगति नहीं करना चाहिये? सभी अच्छे कार्य करना गृहस्थ का धर्म है। इसीलिए पहले बताया था कि गृहस्थ धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ करता है और जो साधुजन हैं, वह मोक्ष पुरुषार्थ करते हैं। शुद्धात्मा का ध्यान करना अच्छी बात है, किन्तु इन सब कार्यों का निषेध करके नहीं, अपितु सभी पुण्य कार्यों को करते हुए करना है। हम तो शुद्धात्माओं का जाप और चिन्तन ही कर सकते हैं, ध्यान तो बड़े-बड़े मुनिराज ही कर पाते हैं। बेटा! जो मित्र

तुमसे ऐसा कहता है, उससे पूछना कि वह भगवान् का अभिषेक–पूजन करता है कि नहीं, श्रेष्ठ साधुओं के दर्शन करने जाता है कि नहीं? यदि नहीं करे या ऊपर–ऊपर से बिना इच्छा से खानापूर्ति करे या साधु की निन्दा करे कि आजकल तो ऐसे साधु हैं कहाँ? जिनके अन्दर साधुता हो, तो बेटा! तुम उस मित्र से दूर ही रहना। उसकी संगति नहीं करना।

प्रश्न 6. पटरानी विजया ने व्रत धारण कर अपने शील की रक्षा की और सत्यन्धर राजा की अन्य दो रानियों ने भी श्राविका के व्रत ले लिये। असमय में राजा की मृत्यु हो जाने पर इन्होंने किसी दूसरे राजा से विवाह क्यों नहीं किया?

उत्तर : नहीं, बेटा नहीं! उत्तम कुल में उत्पन्न हुई स्त्रियाँ अपना एक ही विवाह करती हैं। कुलीन स्त्रियों का एक ही पति होता है। उस पति का मरण हो जाने वह आजन्म अपने शील की रक्षा करती हुई रहती है, किन्तु दूसरा विवाह कभी नहीं करती। रावण की मृत्यु हो जाने पर मन्दोदरी आदि 48000 स्त्रियों ने आर्यिका दीक्षा ले ली थी। श्रेष्ठ पुरुष तो ऐसी विधवा स्त्री से कभी भी विवाह नहीं कर सकते हैं। जब सुलोचना ने स्वयंवर में जयकुमार के गले में वरमाला डाल दी, तब सम्राट भरत के पुत्र अर्ककीर्ति कुछ लोगों के भड़काने से युद्ध के लिए तैयार हो गये। उसी बीच अर्ककीर्ति कहते हैं–"मैं सुलोचना को भी नहीं चाहता हूँ। क्योंकि सबसे ईर्ष्या करने वाला यह जयकुमार जब मेरे बाणों से मर जायेगा, तब उस विधवा से मुझे क्या प्रयोजन रह जायेगा?" विचार करो कि सुलोचना का जयकुमार से स्वयंवर विवाह हो गया और उसी समय युद्ध हो गया। भले ही जयकुमार से सुलोचना का अभी संयोग नहीं हुआ। लेकिन विवाह होने से क्षत्रिय पुरुष के लिए वह दूसरों की स्त्री हो गई। अर्ककीर्ति भी जयकुमार से सुलोचना के निमित्त ही युद्ध कर रहा है, लेकिन यह भी कह रहा है कि मैं जयकुमार को मार दूँगा

और इस विधवा सुलोचना से विवाह नहीं करूँगा। ऐसे अनेक प्रसंग शास्त्रों में हैं जिनसे ज्ञात होता है कि उत्तम कुल की धार्मिक स्त्रियाँ कभी भी जीवन में एक पुरुष के अतिरिक्त अन्य किसी से संयोग की इच्छा नहीं करती हैं। कहा भी है–

सिंह लगन सुपुरुष वचन कदली फलै न बार।
तिरिया तैल हमीर हठ चढ़ै न दूजी बार॥

अर्थ–पाँच चीजें दो बार नहीं होती हैं। सिंह लग्न, श्रेष्ठ पुरुष के वचन, केले का फल, स्त्री तेल (विवाह) तथा हमीर राजा की हठ।

प्रश्न 7. यदि कोई स्त्री विवाह होने के दो-चार साल में विधवा हो गई, तो फिर आजीवन वह घर में किसी के पराश्रित होकर कैसे रह सकती है? सास-ससुर उसे घर में रखते नहीं हैं तथा माता-पिता उसे घर में रखना नहीं चाहते, तब वह स्त्री क्या करे?

उत्तर : भाई! जिनागम के अनुसार तथा अनादि से चली आई संस्कृति के अनुसार भी स्त्री को विधवा हो जाने के बाद दो ही रास्ते हैं-(आचार्य सोमदेव ने 'यशस्तिलकचम्पू' के 13वें अध्याय में कहा है)–(1) जिनदीक्षा, (2) वैधव्य दीक्षा।

वह स्त्री स्वयं अपना धर्म पालन करे। माता-पिता या सास-ससुर यदि उसका दूसरा विवाह कराना भी चाहें तो भी उसे अपनी दृढ़ता दिखाकर परपुरुष को स्वीकार नहीं करना चाहिए। उसे या तो 1. किसी आर्यिका के संघ में जाकर धर्मध्यान करना चाहिए या शक्ति और वैराग्य दृढ़ हो तो आर्यिका दीक्षा ले लेना चाहिए। 2. यदि ऐसा न हो तो अपनी स्त्री पर्याय की निन्दा करते हुए साज-श्रृंगार का त्याग कर रागरंग से रहित होकर सादा भोजन-पानी लेकर धर्मध्यान पूर्वक गृह में ही अपना जीवन गुजारना चाहिए।

प्रश्न 8. ये बातें पुराणों की है। सैद्धान्तिक है। यह हमें मान्य है किन्तु आज की सामाजिक और पारिवारिक स्थिति में ऐसा करना

एक नवविवाहित स्त्री के लिए असम्भव है। आजकल तो पढ़ा-लिखा वर्ग इस बात को स्वीकारता नहीं है। किन्तु यदि कोई विधवा स्त्री दूसरा विवाह करके सुखपूर्वक रहती है, तो लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। अखबारों में उसको प्रोत्साहन देने वाले लेख आते हैं।

उत्तर : असम्भव कुछ भी नहीं है। यदि स्त्री शील की महत्ता समझती है तो वह दूसरा विवाह कदापि नहीं करती। जो स्त्री शील का महत्त्व नहीं समझती है, वह दूसरा विवाह करने को तैयार होती है। संसार में पढ़े-लिखे वर्ग की बात करें, तो आजकल का पढ़ा-लिखा वर्ग प्राय: चरित्रहीन होता जा रहा है। जिस लड़के या लड़की ने विवाह से पहले ही किसी अन्य लड़की या लड़के से सम्बंध बना लिये हैं तो उन्हें इस प्रकार की बातों से कोई फर्क नहीं पड़ता है। **चाहे दूसरा विवाह करो या तीसरा, संसार में ऐसे वर्ग की ही बहुतायत है। और रही बात अखबार में प्रशंसा की, सो धर्मात्मा अखबारों से अपना चरित्र नहीं बनाता।** चरित्र की रक्षा धर्मग्रन्थों को पढ़ने और उन्हीं के अनुसार चलने से होती है, अखबारों की बातों से नहीं। फिर भी अखबार की सुनना है तो सुनो। अभी एक सर्वे में पता चला है-"अमेरिका में हर पाँचवी स्त्री का यौनशोषण हुआ है। शादी से पहले या शादी के बाद, किसी पर-पुरुष ने उसके साथ गलत अवश्य किया है।" ऐसी संस्कृति को जब हम लोग प्रोत्साहन दे रहे हैं और उसी संस्कृति के अनुसार हम बेटे-बेटियों को पढ़ा रहे हैं, आचरण करा रहे हैं, उन्हें वैसे ही कपड़े पहनाकर घुमा रहे हैं, तो यह चरित्र या शील की बातें करना इस पीढ़ी को समझ आ ही नहीं सकती हैं।

प्रश्न 9. कई बार ऐसा भी देखा गया है कि माता-पिता कहते हैं कि हम अपनी बेटी को जिन्दगीभर विधवा का कलंक लगाकर घुट-घुटकर जीने नहीं दे सकते। इसलिए उसका दूसरा विवाह करा देते हैं।

उत्तर : यह उन माता-पिता की नासमझी है और संस्कारहीनता है, जो ऐसा सोचते हैं। उन्हें अपनी बेटी को कलंक से बचाने की और

घुट-घुटकर नहीं जीने देने की इतनी ही चिन्ता है तो वह अपने घर पर लाकर उसे प्रेमपूर्वक-अच्छे व्यवहारपूर्ण वातावरण के साथ रखें। उस विधवा को घुटन भी नहीं होगी और सुरक्षा भी रहेगी। माता-पिता यदि अकेले हैं तो उन्हें सहारा भी मिलेगा और धर्म भी होगा। यदि घर में भाई-बहन हैं तो भी सभी साथ-साथ सुख पूर्वक रहेंगे। यदि वह स्त्री स्वयं दृढ़ प्रतिज्ञा करती है कि मैं अब विवाह नहीं करूँगी तो वह शीलवती मानी जाती है। विधवा का कलंक शीलव्रत से धुल जाता है। समाज में भी उसकी प्रशंसा होती है। घुटन और कलंक तब लगते हैं जब दुविधा की स्थिति बनी रहती है कि मैं दूसरा विवाह करूँ या न करूँ। या फिर शीलव्रत यदि प्रतिज्ञापूर्वक नहीं लिया है तो समाज में चर्चा होती है, किन्तु यदि श्राविका के व्रतों के साथ रहा जाये, तो आज भी नारी उदाहरण बन सकती है। ऐसे उदाहरण आज भी हैं। यह बात अलग है कि ऐसा उदाहरणों की संख्या अनुपात में कम होती है। मैं पूछता हूँ यदि उस स्त्री के भाग्य में पति का सुख नहीं है, तो दूसरा विवाह होने पर भी उसके साथ वही वैधव्य की स्थिति बनी, तो फिर क्या तीसरा विवाह करायेंगे? जो माता-पिता अपनी बेटी को बार-बार भोग-मार्ग की ओर अग्रसर करते हैं, वे अपनी बेटी को एक बार धर्ममार्ग पर लगाकर उस बेटी को पर्याय सुधारने की दुर्लभता क्यों नहीं सिखाते हैं? पाठशाला में पढ़ाकर या आसपास के किसी स्कूल आदि में बच्चों को पढ़ाकर अपनी योग्यतानुसार सामाजिक चेतना में योगदान देते हुए भी अपनी शील की रक्षा करते हुए अपना जीवन गुजारा जा सकता है।

प्रश्न 10. यदि माता-पिता सिखायें और बेटी न मानें तो क्या करें?

उत्तर : अपने भाग्य को धिक्कारें और विचारें कि उस बेटी को या तो बचपन में पाठशाला के संस्कार नहीं मिले या फिर उसे हम शील की महत्ता समझा नहीं पाये।

(7)

जब जीवन्धर सभी कला और विद्याओं में पारंगत हो गया तो गुरुदेव ने उन्हें तत्त्व का उपदेश दिया। कुछ ग्रन्थों के सन्दर्भ या गाथाओं को याद करने से पण्डिताई प्रदर्शित करने वाले, मधुर-वचनों से जनता को मोहित करने वाले, जीविकामात्र और ख्याति-लोभ में हठाग्रह को नहीं छोड़ने वाले तो बहुत हैं, हेय-उपादेय का पाठ पढ़ाने वाले भी बहुत हैं। किन्तु हेय-उपादेय को मानने वाले अतिविरल हैं। गृहस्थ धर्म की नींव श्रावकाचार है। उसे तुमने अच्छी तरह जान लिया है। तत्त्व की बात इतनी है कि मूलरूप से रागद्वेष हेय हैं और रत्नत्रय उपादेय। हेय-उपादेय को समझकर गृहस्थ धर्म के अनुरूप आचरण करने वाला ही सत्श्रावक होता है। आप निकट भव्य हैं। सप्तव्यसन तो कुल परम्परा से ही प्रतिषिद्ध हैं। इसीलिए आप विद्वान् हैं।

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥क्ष.चू. २/२६॥

बुद्धिमान पुरुष सभी जगह पूजे जाते हैं।

इसके उपरान्त गुरुवर आर्यनन्दी ने एकान्त में जीवन्धर को स्नेहपूर्वक बताया कि आप राजा सत्यन्धर के पुत्र हो। इसके बाद की घटित घटनाओं को यथावत् सुनाया। काष्ठांगार की कुटिलता और कृतघ्नता से जीवन्धर का क्रोध बड़वानल की तरह धधक उठा। भौंहे तन गई और शेषनाग के समान प्रतिशोध की अग्नि से दग्ध होकर उसे शीघ्र ही मारने का संकल्प करने लगे। गुरुदेव ने कहा–वत्स! यह असामयिक क्रोध हमारे ज्ञान और उपदेश को जला देगा। इसलिए तुम अभी मेरी पूरी बात सुनो। उस काष्ठांगार को तुम एक वर्ष तक क्षमा करोगे। यह गुरुदक्षिणा मैं तुमसे मांगता हूँ। यद्यपि जीवन्धर क्रोध से व्याकुल थे, फिर भी वे गुरुस्नेहवश गुरु के वचनों का उल्लंघन

नहीं कर सके। गुरुमन्त्र के प्रभाव से उनके क्रोधाग्नि का प्रसार रुक गया था। सच कहा है–

गुरुस्नेहो हि कामसूः॥क्ष.चू.२/२॥

गुरु का स्नेह ही सभी इच्छाओं को पूर्ण कर देता है।

गुरुदेव ने पुनः उपदेश दिया कि वत्स सम्राट! यदि चार चीजें नियंत्रित न रहें तो मनुष्य को अविवेकी बनाकर उसे पतन के गर्त में पटक देती हैं–यौवन, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, बलवत्ता।

1. **यौवन–**इस यौवन के मद में व्यक्ति धर्म और धर्मात्माओं की हँसी उड़ाता हैं। गुरुजनों तथा माता-पिता की अविनय करता है।

2. **सौन्दर्य–**सौन्दर्य का मद कामवासना को जागृत करता है। इस सुन्दरता के अहंकार में स्त्री या पुरुष, निर्लज्ज हो जाता है।

3. **ऐश्वर्य–**यदि धन-वैभव या पदसत्ता का ऐश्वर्य मिल जाता है तो इससे व्यक्ति स्वछन्द होकर नट के समान छलकपट करके सबको लुभाता है और 'ऐश्वर्य में कमी न हो जाये'-इस अहंकार की पूर्ति के लिए अपने सगे-सम्बंधी जनों की हत्या भी कर देता है।

4. **बलवत्ता–**शक्ति और साहस का दुरुपयोग मनुष्य को नीच और हल्का बना देता है। बलवान् व्यक्ति किसी का भी अपमान कर देता है। जिससे उसे स्वयं भी कभी अपमानित होना पड़ता है या मरना पड़ता है।

इन चार मद में से एक का भी समागम अनर्थ का कारण है। फिर यदि चारों का एक साथ समागम हो जाये तो गुरुविनीत और हेय-उपादेय का ज्ञाता ही अनर्थ से बच पाता है। जिनका हृदय गुरुवचनों की सत्सूक्तियों से पवित्र रहता है वे आगामी विपत्तियों से बचकर के संसार के दुःखसागर को तैर जाते हैं। सच कहा है–

भवाब्धेस्तारको गुरुः॥२/३०॥

संसार-समुद्र से तारने वाले ही गुरु होते हैं।

पुण्यवान् जीव को यौवन, सौन्दर्य, ऐश्वर्य और बलवत्ता ये चारों प्राप्त हो जाते हैं, किन्तु वह विवेकी होने से इसका स्वरूप समझकर आत्महित से वंचित नहीं रहता है। ये सब वस्तुएँ जड़ (मूर्ख) पर अपना प्रभाव रखती हैं। जैसे बुलबुला जल के ऊपर रहता है और क्षणभर अपनी उन्नति दिखाकर विलीन हो जाता है, वैसे ही इन नश्वर वस्तुओं का स्वरूप है। राजा उन जड़ वस्तुओं से सहित होने पर भी तेजस्वी प्रकृति का होता है। राजा दूरदर्शी, उद्दण्ड प्रकृति वाले मंत्रियों पर अंकुश रखने वाला, अपराधी को दण्ड देने वाला और न्यायप्रिय होता है। तभी प्रजा उसकी वृद्धि की कामना करती है। कुल परम्परा का वहन करने वाला, क्षत्रियोचित गुणों से सुशोभित राजा प्रजा के हृदय में देवता की तरह वास करता है। निकटस्थ जन राजा को सम्मान भी दें और उसकी तेजस्विता से अभिभूत रहें–यही राजा की सफलता है। राजा वसु की तरह अपनों के व्यामोह में अन्याय, असत्य को बढ़ाने वाला नरकगामी और अपयश का भागी होता है, किन्तु राम की तरह अपनी पत्नी को भी त्याग करने वाला न्यायप्रिय राजा मोक्षमार्गी और यशस्वी होता है।

इस तरह राजोचित गुणों से जीवन्धर को कुशल बनाकर गुरु ने कहा–'अब मैं कृतार्थ हो गया। मेरा रोग भी ठीक हो गया है। मैं पुनः आत्महित के लिए जिनदीक्षा ग्रहण करूँगा।' जीवन्धर यह बात सुनकर गुरुस्नेह से शोकाकुल हो उठे। उन्होंने गुरु से एक वर्ष तक उनकी छत्रछाया में रहने की और अपने ऊपर कृपा बनाये रखने की प्रार्थना की। गुरु ने कहा–'हमारे सदुपदेश ही तुम्हारे लिए छत्रछाया का कार्य करेंगे। तुम निश्चिन्त रहो।' इस प्रकार शिष्य जीवन्धर को समझाकर गुरु आर्यनन्दी ने अन्तिम तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी के पादमूल में जिनदीक्षा धारण कर ली। तप करते हुए कुछ समय में ही उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त किया।

याद रखो–

चित्रं जैनी तपस्या हि स्वैराचारविरोधिनी॥२/१५॥

जैनधर्म के अनुसार तप करना, स्वछन्द आचरण के विरुद्ध है।

प्रश्न 1. गुरु का इतना स्नेह पाना कितना सुखद लगता है?

उत्तर : हाँ बेटा! पहले के छात्र गुरुसान्निध्य में ही विद्या-अध्ययन करते थे। पुराण, राजनीति, समाजशास्त्र, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, व्याकरण, न्यायशास्त्र आदि सभी विद्याओं को सीखने के बाद संसारमार्ग या मोक्ष मार्ग चुनने के लिए स्वतंत्र रहते थे। गुरु का संयोग अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्न 2. क्या आज भी गुरुजन इस प्रकार समझाते हैं?

उत्तर : हाँ, अवश्य समझाते हैं। यदि आप अनुभवी, शिक्षित, चारित्रवान गुरु का कभी संयोग पा लें, तो आप भी उनसे जीवन संबंधी सभी बातों का निर्देश प्राप्त कर सकते हैं। अपने अच्छे कॅरियर का प्रारम्भ गुरु-आशीषों के साथ ही करना चाहिये?

प्रश्न 3. गुरु कैसा होना चाहिये?

उत्तर : जो संसार की विषय-वासनाओं में लिप्त न हो, जो अपने पास मोबाइल आदि परिग्रह न रखता हो, अपना भोजन स्वयं न बनवाता हो, रसना इन्द्रिय लोलुपी न हो, जिनशास्त्रों के अध्ययन, चिन्तन, लेखन, पठन-पाठन में रुचि रखता हो, चारित्र और शील की रक्षा के उपाय जानता हो, वही दयावान, ज्ञानवान और चारित्रवान आत्मा सच्चा गुरु है।

प्रश्न 4. चरम-शरीरी किसे कहते हैं?

उत्तर : जिन्हें उसी जन्म में मुक्ति अवश्य मिलती है, उनका वह शरीर चरम (अन्तिम) शरीर होता है। चरम अर्थात् अन्तिम, शरीरी- शरीर धारण करने वाले चरमशरीरी होते हैं। उसके बाद वे अन्य शरीर धारण नहीं करते। उसी शरीर से मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न 5. गुरुजी ने जीवन्धर को एक वर्ष तक के लिए क्यों रोका?

उत्तर : बेटा! कोई भी कार्य उतावली से करने पर बिगड़ जाता है, चाहे व्यक्ति कितना भी समर्थ क्यों न हो? बेटा! समर्थ व्यक्तियों को भी समय का इन्तजार करना पड़ता है। जब श्रीकृष्ण छोटे थे, तब जरासन्ध के आतंक से भयभीत होकर सभी यादव मथुरा छोड़कर गए थे और द्वारिका में जा बसे। जब कृष्ण समर्थ हो गए तब उन्होंने जरासन्ध का वध किया। योग्यता समय से ही निखरती है। विद्या भी समय से ही फलती है। संकट के समय परेशान न होकर उस समय को धर्म के साथ शान्तिपूर्वक निकालना ही बुद्धिमानी होती है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में ऐसे समय अवश्य आते हैं। **जो अग्नि प्रारम्भ में हवा से बुझती है, वही बाद में हवा को गर्म कर देती है।** समय की प्रतीक्षा मनुष्य के मन की तितिक्षा (सहनशीलता) बढ़ाती है। ठीक ही कहा है–

अकालसाधनं शौर्यं न फलाय प्रकल्पते।
धान्यं वा सम्प्रतीक्ष्यो यः कालः कार्यस्य साधकः॥उ.पु.७५/५८०॥

अर्थात् समय और साधन के बिना प्रकट हुई शूरवीरता फल देने के लिए समर्थ नहीं है अतः धान्य की तरह उस काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए जो कि कार्य का साधक है।

(8)

एक दिन द्वारपाल ने आकर राजा काष्ठांगार को समाचार दिया–कि 'हे देव! इस राज्य की सीमावर्ती वन–प्रदेशों में गायें अभी तक बिना भय के चरती थीं। ग्वाले उन गायों का लालन–पालन करके खुश रहते थे। हरे–भरे तृणों को खानेवाली और घड़े–घड़े भर दूध देने वाली उन निर्दोष गायों का अज्ञात भीलों ने अचानक हरण कर लिया है। कितनी ही गायों को बाणों से छलनी कर दिया है। कठोर वचन बोलने वाले और क्रूर- निर्दयी वे भील ग्वालों पर भी अत्याचार कर गये हैं। ये गायें हमारे राज्य का धन है। सभी प्रकार की शारीरिक पुष्टि इन गायों के द्वारा ही होती है। ऐसा गोधन अपहरण हुआ है। गोवंश की यह चोरी ग्वालों के लिए असह्य है। कितने ही ग्वाले असहाय होकर राजद्वार पर खड़े हैं। सभी गोपाल अपनी गायों को पुनः प्राप्त करने की आपसे भिक्षा मांग रहे हैं।' द्वारपाल के ये वचन सुनकर राजा क्रोध से भर गया। उसने तुरन्त मंत्रियों को बुलाकर कहा–'वहाँ शीघ्र ही सेना भेजी जाय और सभी गायों को छुड़ाकर ग्वालों को सौंपा जाय। भीलों को पकड़कर उचित दण्ड दिया जाय।' इधर काष्ठांगार की सेना तुरन्त निकल पड़ी। उधर भीलों को यह समाचार ज्ञात हो गया। उन्होंने सेना से युद्ध करने की तैयारी कर ली। वे भील अत्यन्त तीक्ष्ण भालों और धनुष–बाणों से सज्जित हो गए। दोनों सेनाओं का घमासान युद्ध हुआ। क्रूर भीलों के तीक्ष्ण प्रहारों को काष्ठांगार की सेना सहन नहीं कर सकी। भीलों की हू–हू करती हुई डरावनी गर्जना से सेना भयभीत होकर लौट आयी। तब यह सूक्ति सत्य सिद्ध हुई–"अपनी गली में तो कुत्ते भी शेर होते हैं।" हारकर आयी सेना ने काष्ठांगार का यश भी भीलों को दे दिया। सम्पूर्ण 'राजपुरी' में यह अपयश फैल गया जो वृद्ध–गोपाल सुना रहे थे कि राजा सत्यन्धर के राज्यकाल में कभी

भी हम लोगों पर ऐसे कष्ट नहीं आए। दुष्ट और अन्यायी राजाओं के समय में ही गोधन का हरण और वध होता है। जो राजा गोवंश की रक्षा नहीं कर सकता है, वह हमारे घर–परिवार की क्या रक्षा करेगा? मानसिक व्यथा से व्यथित उन गोपालों को नागरिक जन सांत्वना दे रहे थे। तभी एक बुद्धिमान नन्दगोप विचार करने लगा–'प्रत्येक कार्य अशुभोदय पर नहीं टाला जा सकता है। प्रयत्न और पुरुषार्थ प्रत्येक परिस्थिति में करना चाहिए।' कहा गया है–

यथाशक्ति प्रतीकारः करणीयः ॥क्ष.चू.२/६८॥

अर्थात् शक्ति के अनुसार उपाय (प्रतिकार) तो करना ही चाहिए।

यदि प्रयत्न करने पर भी सफलता न मिले तब भाग्य को प्रतिकूल समझना चाहिए। यह विचार करके नन्दगोप ग्वाले ने नगर में घोषणा करा दी–'जो कोई भीलों को जीतकर हमारा गोधन हमारे लिए प्रदान करा देगा उस मनुष्य के लिए स्वर्णमय सात पुतलियों के साथ अपनी कुमारी पुत्री भी प्रदान करुँगा।'

यह वार्ता जब जीवन्धर कुमार के पास पहुँची तो उनके मन में ऐसा लगा कि शत्रु के अधीन इन ग्वालों का गोधन नहीं हुआ है, मानों मेरी माँ ही खो गयी है। उन्होंने उसी समय प्रतिज्ञा की–'यदि मैं इन दीन ग्वालों का रक्षक नहीं बन सका तो मेरी सभी विद्या और भुजाओं का शौर्य व्यर्थ है।' सच कहा है–

उदात्तानां हि लोकोऽयमखिलो हि कुटुम्बकम्॥क्ष.च. २/७०॥

उदार चरित्र वाले पुरुषों के लिए सारा संसार ही परिवार है।

जीवन्धर कुमार रथ पर सवार होकर अपने मित्रों के साथ चलते हुए ग्वालों की बस्ती में पहुँचे और उन्हें विश्वास दिलाया कि वह उनका गोधन भीलों से मुक्त कराकर ले आयेगा। बहुत से ग्वाले भी उनके आश्वासन से आश्वस्त होकर उनके साथ चल पड़े। भीलों की बस्ती में पहुँचकर जीवन्धर कुमार ने अपने बाणों की वर्षा से

उनको भयभीत कर दिया। जिन्होंने जीवन्धर के बाणों का सामना किया, उनके सिर हमेशा के लिए भूसात् हो गए। जीवन्धर के पराक्रम को देखकर भील गोधन को वहीं छोड़कर अपनी बस्तियों से भागकर पर्वत की गुफाओं में जा छिपे। जीवन्धर ने सोचा–'जब अपना कार्य सिद्ध हो गया, तो व्यर्थ ही उन भीलों को मारने से क्या प्रयोजन?' तदनन्तर उस समस्त गोधन को साथ लेकर महापराक्रम के तेज को धारण करने वाले जीवन्धर जब राजपुरी में लौटे तो नगर के आबाल-वृद्ध गोपाल, नर-नारी हर्ष से भर गये। जगह-जगह स्वागत, बधाइयाँ और मिठाइयाँ बंटने लगी। गन्धोत्कट सेठ की प्रसिद्धि हुई कि सेठ के पूर्वजन्म के तप से कोई ऐसा पराक्रमी पुत्र हुआ है जो दीनों, गोपालों का रक्षक बन गया है। इस गोवंश की रक्षा करने वाला गिरधर जीवन्धर ही है। नन्दगोप ने प्रतिज्ञानुसार बड़ी दीनता से सेठ जीवन्धर कुमार को अपनी कन्या स्वीकार करने की प्रार्थना की। नन्दगोप ने कहा–'मैं राजवंश का कुलपरम्परागत सेवक हूँ। मेरे वंश में पहले भी 'षणमुख' आदि विशिष्टजनों ने कन्याओं को ग्रहण किया है और ग्वालों का राजवंशों में समागम करने की कथा सुनाई।'

कुरुवंशी जीवन्धर कुमार ने मन में विचार किया–'क्षत्रिय कभी अयोग्य वंश की कन्याओं से संबंध नहीं रखते।' और कहा–'अत्यधिक याचना करना व्यर्थ है मामाजी! आप जो चाहते हैं, वह हमें इष्ट है।' चारों ओर नगर में विवाहोत्सव की तैयारी हुई। नन्दगोप अपनी पुत्री गोविन्दा को लेकर विवाह–मण्डप में उपस्थित हुआ। नन्दगोप ने जीवन्धर के हस्तकमल में जल छोड़ा। तभी जीवन्धर ने अपने मित्र पद्मास्य का हाथ आगे करके कहा–नन्द मामा! यह मित्र मुझसे शरीरमात्र से भिन्न है। ऐसा कहकर पद्मास्य के लिए जलधारा ग्रहण करवा दी। फिर अग्नि के समक्ष पद्मास्य और गोविन्दा का विवाह सम्पन्न करवाया। जीवन्धर ने ग्वाले की कन्या का संबंध स्वीकार नहीं किया। सच कहा है–

न ह्ययोग्ये स्पृहा सताम् ॥क्ष.च.२/७४॥

सज्जन पुरुषों की इच्छा अयोग्य पदार्थ में नहीं होती है।

प्रश्न 1. जो भील काष्ठांगार की सेना से पराजित नहीं हुए, वे जीवन्धर के द्वारा कुछ ही मित्र–सेना से कैसे डर गये?

उत्तर : बेटा! हार–जीत कभी भी सेना की संख्या से नहीं होती। हार–जीत सेना का संचालन करने वाले सारथी या सेनापति के पराक्रम पर निर्भर करती है। पाण्डवों की संख्या पाँच थी और उनके सारथी श्रीकृष्ण थे। जबकि कौरवों को अक्षौहिणी संख्या प्रमाण सेना दी थी, तब भी जीत पाण्डवों की हुई। पराक्रमी व्यक्ति अकेला भी बहुत बड़ी सेना से लड़ने के लिए समर्थ होता है। हाथी और घोड़ों के झुण्ड के लिए एक सिंह ही पर्याप्त होता है। अतः जीवन्धर ने अपने पराक्रम से भीलों पर विजय प्राप्त की थी।

प्रश्न 2. क्या गायों की रक्षा के लिए क्षत्रिय लोग भी लड़ते हैं?

उत्तर : हाँ! क्षत्रिय पुरुष ही गोवंश की रक्षा करते आए हैं। जिस कुरुवंश में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ तीर्थङ्कर विख्यात हुए है, उसी वंश के क्षत्रिय पुरुष जीवन्धर स्वामी हुए हैं।

प्रश्न 3. जीवन्धर का अभी विवाह तो हुआ नहीं था, फिर भी उन्होंने गोविन्दा से विवाह क्यों नहीं किया?

उत्तर : महापुरुष न्यायोचित आचरण करते हैं। ऐसी नीति है कि क्षत्रिय पुरुष अपने योग्य कुल की कन्या से ही विवाह करते हैं। विवाह करने में सदैव योग्य-अयोग्य का विचार करना चाहिए। गोविन्दा, नन्दगोप ग्वाले की पुत्री थी, कुलीन न होने से जीवन्धर कुमार ने उससे विवाह करना उचित नहीं समझा। अतः उसका विवाह अपने मित्र पद्मास्य से करा दिया।

प्रश्न 4. आजकल तो देखा जाता है कि जैन समाज की लड़कियाँ और लड़के निम्न-जाति में विवाह कर लेते हैं। क्या यह ठीक है?

उत्तर : यह बात बिल्कुल ठीक नहीं है। इससे धर्म की हानि होती है। जो लड़कियाँ साथ पढ़ने वाले या साथ जॉब करने वाले लड़कों के कुल वंश को देखे बिना उन पर मोहित होकर विवाह कर लेती हैं, उनका जैनधर्म जैसा पवित्र कुल तो हमेशा के लिए छूट जाता है। यह भी देखा गया कि बाद में जब वे परेशान होती हैं, तो फिर उनके माता-पिता भी उनसे कुछ मतलब नहीं रखते, जिससे उन्हें घोर यातना या तलाक का दुःख सहन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, उनकी होने वाली संतान के नाम पर तो पिता का वंश और गोत्र लिखा जायेगा, जिससे जैनधर्म की परम्परा का नाश हो जाता है। दिनों-दिन जैनों की संख्या में कमी के बहुत से कारणों में एक कारण जैन-लड़कियों का अन्य जाति में विवाह करना भी है। लड़के भी यदि उच्च जाति की लड़की से विवाह करने का मन नहीं रखते और किसी से भी कर लेते हैं, तो वे भी योग्य कुल का आचरण नहीं कर पाने से धर्म, दान, पूजा से वंचित हो जाते हैं। इसलिए विवाह मोहित होकर नहीं, जाति-वंश, धर्म, आचार-विचार देखकर ही करना चाहिए।

(९)

जब पुण्य का तीव्र उदय होता है तो घर बैठे-बैठे सब काम पूर्ण हो जाते हैं। सुनो! विजयार्ध पर्वत पर रहने वाले एक गरुड़वेग राजा की गन्धर्वदत्ता नाम की पुत्री है। निमित्तज्ञानियों ने बताया कि उसका विवाह 'राजपुरी' नगरी में वीणावादन में विजय प्राप्त करने वाले किसी युवा के साथ होगा। राजपुरी का एक वैश्य (व्यापारी) श्रीदत्त है। जो राजा गरुड़वेग का पूर्व परिचित है। किसी तरह उस वैश्य को गरुड़वेग के पास लाया गया। गरुड़वेग राजा ने श्रीदत्त को अपनी कन्या सौंपते हुए कहा कि आप वीणा-स्वयंवर का आयोजन कर राजपुरी के किसी युवक से इसका विवाह करने का उत्तरदायित्व ग्रहण करें।

श्रीदत्त शुभ मुहूर्त में नित्यलोक नगरी से प्रस्थान करके गन्धर्वदत्ता को लेकर राजपुरी आया। वीणा-स्वयंवर की तिथि निश्चित करके स्वयंवर की घोषणा कर दी। सभी राजपुत्रों के पास निमंत्रण भेज

दिया। स्वयंवर मण्डप में निश्चित तिथि पर अनेक राजकुमार उपस्थित हुए। जब सजी-धजी गन्धर्वदत्ता ने परिवादिनी नामक वीणा बजाई, तब सभी राजकुमार आश्चर्यचकित रह गये और कोई भी उस जैसी वीणा नहीं बजा पाया अतः सभी राजा पराजित हो गये। जीवन्धर ने जब वह वीणावादन सुना तो उसकी वीणा में अनेक दोष बताये। दूसरी निर्दोष घोषवती वीणा मंगवायी और उसे बजाकर सभी को आश्चर्यचकित कर दिया। गर्न्धदत्ता ने अपनी पराजय स्वीकार करके जीवन्धर कुमार के गले में वरमाला डाल दी। सच कहा है-

अपुष्कला हि विद्या स्यादवज्ञैकफला क्वचित्॥क्ष.चू.३/४४॥

अपूर्ण ज्ञान कहीं न कहीं अपमान करा ही देता है।

काष्ठांगार ने ईर्ष्या के कारण उपस्थित राजकुमारों को जीवन्धर के विरुद्ध उकसा दिया। फलस्वरूप उन राजकुमारों से युद्ध हुआ। युद्ध में जीवन्धर ने सभी को परास्त कर दिया। गन्धर्वदत्ता को लेकर जीवन्धर गन्धोत्कट के घर पहुँचे। वहाँ उत्तम मूहूर्त में उनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ। इस तरह जीवन्धर की माँ को आये सपनों में जो आठ मालायें दिखी थीं, उनका फल आठ स्त्रियों का लाभ था। उनमें से प्रथम लाभ गन्धर्वदत्ता का हुआ। यही जीवन्धर कुमार की पटरानी बनी।

अन्याभ्युदयखिन्नत्वं तद्धि दौर्जन्यलक्षणम्॥क्ष.च.३/४८॥

दूसरों की उन्नति में जलना ही दुर्जनता का लक्षण है।

प्रश्न 1. यह विजयार्ध पर्वत कहाँ है?

उत्तर : भरत क्षेत्र के मध्य में पूर्व-पश्चिम दिशा में फैला हुआ यह पर्वत है। इस पर्वत पर विद्याधर मनुष्य रहते हैं।

प्रश्न 2. इस पर्वत का नाम विजयार्ध क्यों पड़ा।

उत्तर : जब चक्रवर्ती दिग्विजय के लिए जाता है, तो विजयार्ध पर्वत पर पहुँचकर आधी विजय पूर्ण कर लेता है। इसलिए इस पर्वत

का नाम विजयार्ध पर्वत है। यूं भी कह सकते हैं कि छः खण्ड में से तीन खण्ड की विजय होने से इस पर्वत तक विजय-पताका लहराई गयी थी। इसलिए इसे विजयार्ध कहा है।

प्रश्न 3. क्या विजयार्ध पर्वत पर रहने वाले लोग यहाँ आर्यखण्ड के लोगों से संबंध रखते हैं?

उत्तर : हाँ, हमेशा से रखते आये हैं। चक्रवर्ती की छयानवे हजार रानियों में बत्तीस हजार रानी विद्याधरों की पुत्रियाँ होती हैं। इसके अतिरिक्त हनुमान, सुग्रीव आदि भी विद्याधर मनुष्य थे, जिन्होंने आर्यखण्ड वासी श्रीराम की सेवा-सहायता की। रावण भी विद्याधर था।

प्रश्न 4. क्या ये विद्याधर लोग यहाँ के राजाओं से भी लड़ते हैं?

उत्तर : हाँ, तभी तो रावण और राम-लक्ष्मण का युद्ध हुआ। चक्रवर्ती भी विजयार्ध पर्वत के राजाओं को अपने अधीन करता है। अर्थात् यहाँ के राजा लोग भी विजयार्ध पर्वत के विद्याधरों से लड़ने, जीतने जाते हैं। आपस में विवाह संबंधों के लिए भी युद्ध आदि होते हैं।

प्रश्न 5. क्या अभी भी हम लोग इन विद्याधरों को देख सकते हैं? या विजयार्ध पर जा सकते हैं?

उत्तर : इस पंचमकाल में ऐसी घटना नहीं होती है। कारण यह है कि जब यहाँ के जीव हीन-पुण्य वाले होने लगे तो उन विद्याधरों से सम्बंध टूट गया। कोई विद्याधर या देव विद्या के बल से ले जाना चाहे तो जा सकते हैं। किन्तु अब ऐसा नहीं के बराबर है।

प्रश्न 6. क्या विद्याधर अपने से अधिक पुण्य वाले होते हैं?

उत्तर : हाँ! इसका कारण यह भी है कि अब यहाँ महापुरुषों की उत्पत्ति होना समाप्त हो गया है। जो महापुरुष मोक्षपुरुषार्थ करके मोक्ष लाभ प्राप्त करते थे, वह मोक्षलाभ इस क्षेत्र से पंचम काल में नहीं होता है, किन्तु विजयार्ध पर्वत से मोक्षलाभ आज भी होता

है। इस अपेक्षा से ज्ञात होता है कि विद्याधर लोग अपने से अधिक पुण्य वाले हैं।

प्रश्न 7. क्या वैज्ञानिकों ने भी विजयार्ध पर्वत नहीं खोजा?

उत्तर : यह पर्वत पुण्यात्माओं को ही प्राप्त होते हैं। वैज्ञानिक लोग मशीनरी ज्ञान तो रखते हैं, किन्तु इतना पुण्य नहीं रखते, जिससे वे इस पर्वत पर पहुँच पायें अतः विजयार्ध पर्वत नहीं खोज सके।

प्रश्न 8. श्रीदत्त विजयार्ध पर्वत पर कैसे पहुँच गया था?

उत्तर : श्रीदत्त को एक 'धर' नाम के विद्याधर ने अपनी विद्या के बल से पहुँचाया था। पहले तो उस विद्याधर ने उस समुद्र में जोरदार तूफान मचा दिया, जिससे श्रीदत्त किसी तरह बचकर अनजाने द्वीप में पहुँच गया। वहाँ से विद्याधर ने एक मायामयी ऊँट पर श्रीदत्त को बिठाकर आकाश मार्ग से चलते हुए विजयार्ध पर्वत पर पहुँचाया। फिर गरुड़वेग राजा से मिलाया था।

प्रश्न 9. क्या 'स्वयंवर विवाह' आज भी हो सकते हैं?

उत्तर : अरे बेटा! आज इतने हीन पुण्य वाले जीव हो गये हैं कि स्वयंवर विवाह तो सम्भव ही नहीं है। यह सब पुण्यवानों के पराक्रम और विद्या के बल से होता था। अब तो 'सामूहिक विवाह' होते हैं। अब लोगों को विवाह-संबंध के लिए वर, वधू नहीं मिल पाते हैं। अखबारों और परिचय सम्मेलनों से अपना विज्ञापन करना पड़ता है, तब कहीं सम्बंध होते हैं। पुण्यहीन लोगों के ये कष्ट भी एक परम्परा बनते जा रहे हैं। देखो! जीवन्धर स्वामी को कैसे घर बैठे विद्याधर राजकुमारी का लाभ हुआ। यह सब पुण्यवान जीवों के साथ ही होता है। आजकल तो इतनी पुण्यहीन संतान होने लगी कि माता-पिता भी सोचते हैं-ठीक है, उसने अपना सम्बंध स्वयं बना लिया तो हमें चिन्ता किस बात की?

प्रश्न 10. श्रीदत्त ने शुभमुहूर्त में प्रस्थान किया तो क्या गमनागमन में मुहूर्त आदि भी देखे जाते हैं?

उत्तर : हाँ! शुभ तिथि, शुभ वार, शुभ योगों में ही विशिष्ट लाभ आदि होने वाले कार्य किये जाते हैं।

प्रश्न 11. पुण्ययोग होने पर सभी कार्य स्वयं सिद्ध होते हैं, फिर शुभमुहूर्त की क्या जरूरत है?

उत्तर : आपका कहना सच है। तीव्र पुण्य का जोर हो तब तो कुछ अन्तर नहीं पड़ता, किन्तु जब पुण्य कम होता है, तब इन संयोगों से कार्य करना होता है।

(10)

एक दिन वनक्रीड़ा के लिए विहार करते हुए जीवन्धर कुमार ने कुछ कोलाहल सुना। कोलाहल की दिशा में जाकर देखा तो एक कुत्ता मरणोन्मुख दिखाई दिया। उस कुत्ते ने याज्ञिकों की यज्ञ-सामग्री को दूषित कर दिया था। कुत्ते के द्वारा यज्ञ-सामग्री को अशुद्ध कर देने से याज्ञिकों का गुस्सा बढ़ गया और उन्होंने डण्डों से उस कुत्ते को पीट डाला। वह मरने ही वाला था कि जीवन्धर कुमार वहाँ पहुँच गये। दया से आर्द्रहृदय होकर उन्होंने उसके कान में णमोकार मंत्र का उपदेश दिया। अतिपीड़ा में भी उसने कान खड़े करके, पूंछ हिलाकर 'मंत्र को सुना है' यह दर्शाया। मन्त्रपाठ से कुत्ते का भाग्य विशेष बढ़ गया, जिससे मरकर देव बना। यह सत्य कहा गया है-

पञ्चमन्त्रपदं जप्यमिदं केन न धीमता ॥क्ष.चू.४/१०॥

पञ्चनमस्कार मन्त्र का कौन बुद्धिमान जाप नहीं करेगा?

जिस मन्त्र को मरण के समय सुनने से कुत्ता भी देवता हो जाए, ऐसे पञ्चनमस्कार मन्त्र का कौन बुद्धिमान जाप नहीं करेगा?

एक मुहूर्त मात्र में वह दिव्य शरीर का धारक हो गया। उसी समय उत्पन्न हुए अवधिज्ञान से उसने ज्ञात कर लिया कि यहाँ उत्पन्न होने का कारण जीवन्धर के द्वारा सुनाया गया णमोकार मन्त्र था। वह देव उसी समय जीवन्धर कुमार के समीप आया। कुमार ने आश्चर्य से पूछा कि आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? देव ने उत्तर दिया–मैं कुत्ते का जीव हूँ। आपकी कृपा से मैं 'सुदर्शन' नाम का यक्षों का इन्द्र बना हूँ। मैं आपके उपकार से अभिभूत हूँ। सच है–

मुक्तिप्रदेन मन्त्रेण देवत्वं न हि दुर्लभम्॥क्ष.चू. ४/१३॥

अर्थात् जिस मन्त्र से मुक्ति प्राप्त होती है उस मन्त्र से देव-पर्याय मिल जाना कुछ भी दुर्लभ नहीं है।

पुनः उस देव ने जीवन्धर से कहा–'यदि आपको कभी कोई कष्ट आए तो मेरा स्मरण अवश्य करके मुझे सेवा का अवसर देना।' इतना कहकर वह देव प्रणामपूर्वक गले लगाकर अदृश्य हो गया। वास्तव में सज्जन उपकार करने वाले के प्रति प्रत्युपकार की भावना अवश्य रखते हैं।

उसी समय गुणमाला और सुरमञ्जरी नाम की दो सखियों में अपने-अपने स्नानोपयोगी चूर्ण की श्रेष्ठता सिद्ध करने की होड़ लगी। उन्होंने किसका चूर्ण श्रेष्ठ है, इस बात का निर्णय करने के लिए किसी श्रेष्ठ विद्वान् को चुनने का निर्णय लिया। तब सभी के कहने से जीवन्धर के ऊपर चूर्ण-निर्णय की बात सौंपी। जीवन्धर ने दोनों चूर्णों को दोनों हाथों में लेकर ऊपर उछाल दिया और कहा–'जिसका चूर्ण उत्तम होगा, उस पर सुगन्ध-लोभी भ्रमर आ जाएंगे।' गुणमाला

के अधिक गुणवान 'चन्द्रोदय' नामक चूर्ण को भ्रमरों से अलंकृत देख उसका चूर्ण श्रेष्ठ सिद्ध हुआ। इस तरह जीवन्धर की निर्णायक क्षमता की सभी ने प्रशंसा की। सुरमञ्जरी को इस उपेक्षा से बहुत बुरा लगा। वह जीवन्धर कुमार को चाहती थी, इसलिए उसके अतिरिक्त किसी और पुरुष को नहीं देखूँगी उसने ऐसी प्रतिज्ञा की थी।

अकारणोपकाराणामवश्यंभावि तत्फलम्॥उ.पु. ७५/३६५॥

अर्थात् बिना कारण ही जो उपकार किए जाते हैं, उनका फल अवश्य होता है।

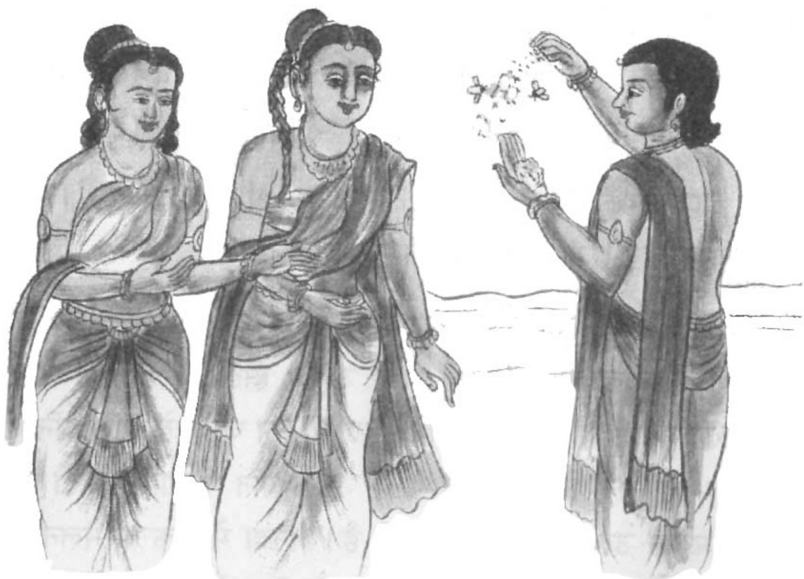

प्रश्न 1. मरते हुए जीव को णमोकार मन्त्र सुनाने से क्या सभी देव बन जाते हैं?

उत्तर : ऐसा नहीं है, किन्तु जो जीव जाग्रत रहता है, श्रद्धा से सुनने से जिसके परिणाम शान्त हो जाते हैं, जिनका आयु-बंध न हुआ हो वह जीव देव बन जाता है।

प्रश्न 2. यह कैसे मालूम होगा कि इस जीव को मन्त्र सुनाने से लाभ होगा या नहीं?

उत्तर : यह उसकी चेष्टाओं से ज्ञात हो जाता है। जिसके परिणामों में शान्ति आती है, तो उसकी वेदना, कराहना कम हो जाता है। णमोकार मन्त्र उस जीव के लिए निमित्त का काम करता है। कोई भी जीव यदि कभी ऐसा दिखाई दे तो उसको मन्त्र सुनाने से लाभ होगा ही, ऐसा सोचकर सुनाना चाहिए।

प्रश्न 3. यदि मन्त्र सुनाने से लाभ न हुआ तो?

उत्तर : तो भी सुनाने वाले को तो लाभ ही है। णमोकार मन्त्र भावसहित पढ़ने वाला बहुत पुण्य का बंध करता है, पाप की निर्जरा करता है। उसका हृदय दया सहित होता है, जिससे वह दया धर्म से भरा होता है।

प्रश्न 4. कुछ लोग चींटी, मक्खी को भी मंत्र सुनाते हैं। जब उनके कान ही नहीं है, तो उनको सुनाने से क्या लाभ?

उत्तर : उनको सुनाने से भी लाभ होता है। णमोकार मंत्र के उच्चारण से वातावरण में ऐसी तरंगें उत्पन्न होती हैं जो शान्तिमय वातावरण बनाती हैं। कान नहीं होते हुए भी उन जीवों के पास इन्द्रिय मतिज्ञान, श्रुतज्ञान होता है, उससे भी उनके ज्ञान में शान्ति आती है। उनको उत्कृष्ट पर्याय प्राप्त हो सकती है। जेनेवा में एक सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों ने यह माना है कि यदि विश्व में शान्ति किसी मन्त्र से उत्पन्न हो सकती है तो वह णमोकार मंत्र है।

प्रश्न 5. किसी जीव का यदि इस तरह मारते हुए अकालमरण हो जाता है या किसी दुर्घटना में मर जाता है तो बहुत दिनों तक आत्मा भटकती रहती है। क्या यह सच है?

उत्तर : नहीं, कोई भी आत्मा बिना शरीर के कभी भी भटकती नहीं है। प्रत्येक आत्मा का एक, दो, तीन समय में नया शरीर धारण

करके जन्म हो जाता है। मरने वाले जीव की आयु उसी समय पूर्ण होकर खिर जाती है। अगले भव की आयु का बंध होकर ही नया जन्म लेने के लिए शरीर छूटता है। जब तक आगामी भव की आयु का बंध नहीं होता शरीर छूटता नहीं है।

प्रश्न 6. देवों को कैसे पता चल जाता है कि हमारा जन्म यहाँ कैसे हुआ?

उत्तर : ऐसा नियम है कि जन्म लेने के बाद उन्हें अवधि ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। उस अवधिज्ञान से वह देव सर्वप्रथम यही जानते हैं कि हम यहाँ अकस्मात् कैसे आ गये?

(11)

एक दिन जीवन्धर ने मदमाते हुए हाथी को वश में करके गुणमाला की रक्षा की। जिससे उन्हें दूसरा 'गुणमाला' का लाभ हुआ। हाथी को वश करते समय उन्होंने हाथी को अपनी वज्रमुष्टि से सूंड के ऊपर मस्तक पर प्रहार किया था।

वह हाथी मन में बहुत सन्ताप को धारण करके खेदखिन्न हुआ था। उसने जीवन्धर की मार से लज्जित होकर खाना-पीना भी छोड़ दिया। महावत पहले तो उसे मारकर या तिरस्कार कर भोजन कराना चाहता था, लेकिन उसने एक ग्रास भी नहीं खाया। वह हाथी राज्य का प्रमुख हाथी था। वैद्यों के उपचार से भी कोई अन्तर नहीं हुआ। तब महावत ने समझ लिया है कि यह जीवन्धर की मार से दु:खी है। यह बात काष्ठांगार के पास पहुँची। काष्ठांगार आग बबूला हो गया। स्वाभाविक ईर्ष्या से भरे काष्ठांगार ने आदेश दिया-'दुष्ट

जीवन्धर को इसी क्षण पकड़कर लाओ।' आदेश पाते ही अनेक योद्धाओं ने अनेक प्रकार के हथियारों के साथ आकर गन्धोत्कट का घर घेर लिया। जीवन्धर उन योद्धाओं से युद्ध करने लगे। किन्तु पिता गन्धोत्कट ने आकर कहा–'हे वत्स! हमें ऐसा नहीं करना चाहिए। हमें राजाज्ञा में रहना चाहिए। हम इनके साथ राजमहल चलें और देखें कि क्या कारण है जो आपको बुलाया है।' जो पराक्रम बुद्धि शून्य होता है वह अपने को ही दुविधा में डाल देता है। हमें नीतिपथ का उल्लंघन करके प्रवृत्ति करना शोभा नहीं देता है। पिता की बात को मानकर विनयशील जीवन्धर पिता के साथ काष्ठांगार के सामने पहुँचे। गन्धोत्कट ने राजा से जीवन्धर का अपराध क्षमा करने की विनती की। काष्ठांगार क्रोध से भरा हुआ था। उसने सिपाहियों को आदेश दिया कि इस बार जीवन्धर को क्षमा न किया जाय। बहुत दिनों से राज्य में इसका आतंक सुनने में आ रहा है। अतः इसे तुरन्त प्राणदण्ड दिया जाये।

राजाज्ञा से प्रधान सिपाही उन्हें पकड़कर 'वधस्थान' की ओर ले चले। गन्धोत्कट के नीचे से मानो धरती ही धँस गयी हो। इस समाचार से पूरा परिवार तथा नगरवासी शोकाकुल हो गये। असमय में जीवन्धर की मृत्यु कैसे हो सकती है? मुनिराज के वचन जीवन्धर के विषय में असत्य कैसे हो सकते हैं? अनेक तरह के विचारों के साथ लोग शोक कर रहे थे कि जो सामने दिख रहा है, वह सच है। जीवन्धर उन योद्धाओं को मारने में समर्थ होते हुए भी सोचने लगे कि बिना प्रयोजन इन सेवकों के प्राण लेने से क्या होगा? अभी गुरुदेव का कहा हुआ एक वर्ष पूर्ण नहीं हुआ है, इसीलिए मैं काष्ठांगार को भी नहीं मारता हूँ। इस विचार के साथ उन्होंने 'सुदर्शन यक्ष' का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह देव उपस्थित हो गया। उसने जीवन्धर कुमार को रास्ते से अनायास ही उठाकर चारों ओर तूफान, वर्षा से भगदड़ मचाते हुए क्षणभर में 'चन्द्रोदय' नामक पर्वत पर पहुँचा दिया। वहाँ अपने भवन में अनेक देवियों के साथ उनको सिंहासन पर बैठाकर आदर सत्कार किया।

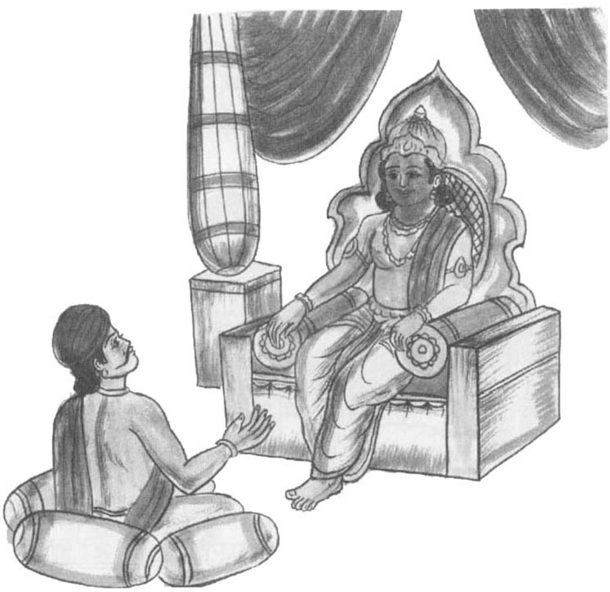

अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए यक्षेन्द्र ने कहा–'स्वामिन्! आपके उपकार से मैं कुत्ते से पवित्र देव बना हूँ, इसीलिए आपका नाम 'पवित्रकुमार' होना चाहिए। ठीक ही कहा है–

तत्सौहार्दं यदापत्सु सुहृद्भिरनुभूयते।।उ.पु. ७५/५७६।।

अर्थात् मित्रता वही है जिसका कि मित्र लोग आपत्ति के समय अनुभव करते हैं।

इधर प्रधान सिपाही ने जब जीवन्धर को कहीं नहीं देखा तो उसने काष्ठांगार से जाकर कह दिया–'मैंने उसे एकान्त में ले जाकर मार दिया है।' इस समाचार को सुनाकर काष्ठांगार से उसने बहुत सारा पुरस्कार प्राप्त किया।

जीवन्धर उस यक्षदेव के महल में कुछ दिनों तक रहे, फिर विचार किया–'व्यर्थ में यह समय क्यों गँवाया जाय। जब तक राज्यप्रवेश का समय नहीं आता है, तब तक दिव्य चैत्यालयों की वन्दना करके अपूर्व पुण्य का अर्जन किया जाय।' यह विचार कर यक्ष से प्रस्थान करने की आज्ञा माँगी। यक्ष ने बहुत आदर के साथ भविष्य में होने वाले लाभों को जानकर और उन्हें स्नेहपूर्वक तीन मन्त्र प्रदान किए–1. कामरूप विद्या अर्थात् इच्छानुसार रूप परिवर्तन करना, 2. गान विद्या में निपुणता, 3. विषहाने अर्थात् सभी प्रकार के विषों को दूर करने वाला मंत्र। सुदर्शन यक्षेन्द्र ने अपने अवधिज्ञान से जीवन्धर कुमार के भविष्य के विषय में बताया–हे सम्माननीय! आप एक वर्ष में राजाधिराज बनोगे तथा राज्य का अपार आनन्द प्राप्त करके इसी भव से मोक्ष प्राप्त करोगे।

जीवन्धर कुमार ने यक्षेन्द्र से अनुमति लेकर चन्द्रोदय पर्वत से यात्रा के लिए प्रस्थान किया। रास्ते में जीवन्धर ने एक भयंकर वन देखा जिसमें सर्वत्र आग लगी हुई है और उसमें हाथियों का समूह घिरा हुआ है। 'ऐसे में अन्य दुर्बल पशु–पक्षियों का क्या होगा?'–ऐसा विचार करके जीवन्धर का हृदय दया से भर गया। उन्हें लगा कि

मानो यह अग्नि हमें ही सता रही हो। उन्होंने उस उपद्रव को दूर करने के लिए जिनेन्द्र भगवान् के चरणकमलों को अपने हृदय में स्थापित कर स्मरण किया। उसी समय वहाँ मेघ-गर्जना के साथ बादल छा गये और मूसलाधार बरसात होने लगी। जीवों की प्राण-रक्षा से हर्षित होकर जीवन्धर आगे बढ़ गए। धर्मात्मा का स्वभाव ऐसा ही होता है। कहा भी है-

धर्मो नाम कृपामूलः सा तु जीवानुकम्पनम्।
अशरण्य-शरण्यत्वमतो धार्मिकलक्षणम्।।क्ष.चू.५/३५।।

अर्थात् दया ही धर्म का मूल है। जीवों की रक्षा करना ही दया है। अशरण को जो शरण में ले, यही धार्मिक की पहचान है। अर्थात् धार्मिक जन अरक्षितों की रक्षा करते हैं।

प्रश्न 1. क्या देव लोग भी ऐसा मित्रवत् व्यवहार मनुष्य के साथ करते हैं?

उत्तर : हाँ! जो अतिशय पुण्य को धारण करते हैं, उन धर्मात्मा का देव लोग भी इसी तरह स्वागत सत्कार करते हैं।

प्रश्न 2. जीवन्धर ने सिपाहियों से बचने के लिए यक्षदेव का स्मरण क्यों किया?

उत्तर : उन्होंने यक्ष का स्मरण तत्काल आपत्ति से बचने के लिए किया था। जो मित्रवत् हैं उनका स्मरण करने में कोई बाधा नहीं है।

प्रश्न 3. भगवान् जिनदेव के अलावा किसी को स्मरण नहीं करना चाहिए, फिर ऐसा क्यों कहा जाता है?

उत्तर : इसमें कोई दोष नहीं है। पहले किसी देव की सिद्धि करो, फिर उससे अपना काम लेने के लिए उसका स्मरण करो या उस पर निर्भर रहो, यह कार्य अनुचित है। देव स्वतः आकर जीवन्धर को अपना परिचय देकर गया था। उन्होंने उस देव की कोई आराधना नहीं की, अपितु देव ने ही जीवन्धर की स्तुति पूजा की। जीवन्धर ने भक्तिभाव से किसी देव का स्मरण नहीं किया, फिर आराधना की बात तो बहुत दूर है। जब जीवन्धर कुमार ने पशुओं को जलते हुए देखा तो उन्होंने जिनेन्द्र भगवान् के चरणकमलों का स्मरण किया। इससे सिद्ध है कि मित्रवत् देवों को महापुरुष ऐसी सेवा का अवसर देते हैं न कि उनकी सेवा करते हैं।

प्रश्न 4. इस प्रसंग से कोई यह कहे कि देखो! चरमशरीरी सम्यग्दृष्टि जीव भी देव का स्मरण करते हैं, इसलिए रक्षकदेवों की आराधना करना चाहिए?

उत्तर : यह तो अपनी सोच को जबरदस्ती सिद्ध करने की बात हुई। सम्यग्दृष्टि जीव आपकी तरह देवों को प्रसन्न करने के लिए उनकी पूजा-अर्चना कदापि नहीं करते हैं। वे देव हमारी रक्षा करेंगे,

इस विचार से उनकी सेवा-आराधना भी नहीं करते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव जीवन्धर की तरह दयाधर्म करते हैं। फल की इच्छा नहीं करते हैं।

(12)

विशाल मरूस्थल को लांघकर उन्होंने एक पर्वत देखा। उस पर्वत के ऊपर एक अति उन्नत जिनालय देखा। जैसे कोई प्यासा मनुष्य तालाब के पास पहुँचता है, वैसे ही आदर से जीवन्धर जिनालय के पास पहुँचे। उन्होंने तीव्र भक्ति से युक्त होकर भगवान् अरिहन्त देव की यथायोग्य जो सामग्री उपलब्ध हो पाई, उसी से पूजा की। मन्दिर की बार-बार प्रदक्षिणा दी। उस मन्दिर में जिनशासन की रक्षा करने वाली यक्षिणी रहती थी। उसने उन्हें आदरपूर्वक वस्त्र तथा भोजन प्रदान किया। वहाँ से चलकर वह पल्लव देश (दक्षिण भारत का एक देश) की चन्द्राभा नाम की नगरी में पहुँचे। वहाँ के नगरवासी बड़े शोकाकुल और उदास थे। जगह-जगह दुकानों पर खड़े लोग आपस में चर्चा कर रहे थे। जीवन्धर ने नगर में व्याप्त शोक का कारण पूछा तो ज्ञात हुआ कि यह पल्लव देश की राजधानी है, जिसका राजा लोकपाल है। उसकी एक पद्मा नाम की कन्या है। उसे सर्प ने डस लिया है। बड़े-बड़े विष-वैद्य, मान्त्रिक आदि भी उस कन्या के विष को दूर न कर सके। लेकिन नगर का श्रेष्ठ ज्योतिषी कहता है कि यह कन्या ठीक हो जाएगी। राजा ने उसकी बात पर विश्वास करके घोषणा करायी है-'जो मेरी कन्या का विष हरण कर देगा, उसे मैं अपना आधा राज्य दूँगा।' चारों ओर राजा के दूत किसी ऐसे चतुर मनुष्य की खोज कर रहे हैं।

जीवमात्र पर करुणा रखने वाले जीवन्धर कुमार कन्या का विष दूर करने के लिए राजमहल की ओर चल पड़े। सच ही है-

निर्हेतुकान्यरक्षा हि सतां नैसार्गिको गुणः॥क्ष.चू. ५/४३॥

अर्थात् बिना प्रयोजन दूसरों की रक्षा करना ही सज्जनों का स्वाभाविक गुण है।

बिना रोक-टोक के वह भीतर महल में चले गए। कन्या के चारों ओर बहुत से परिजन, बन्धुओं को शोकाकुल और रुदन करते देखा। तभी किसी विशिष्ट पुरुष के आने का समाचार सुनकर राजा जीवन्धर के चरणों में गिरकर पुत्री को निर्विष करने की प्रार्थना करने लगा। जीवन्धर ने उसे करुणापूर्ण दृष्टि से देखा। क्षणभर में ही वह कन्या विषरहित होकर मूर्छा छोड़कर उठ बैठी। चारों ओर हर्ष का वातावरण छा गया। राजा ने कहे अनुसार जीवन्धर को आधा राज्य दिया और बड़े सम्मान के साथ आदरपूर्वक सेवा की। राजा का मन कन्या का विवाह ऐसे महापुरुष से करने का हुआ। अपने इष्ट मंत्रियों, पुरोहित और नैमित्तिकों से चर्चा करने के बाद राजा ने पद्मा का विवाह जीवन्धर से कर दिया। यह पूर्वकृत तीव्र-पुण्य के उदय से उन्हें परदेश में भी तीसरे लाभ की प्राप्ति हुई। कुछ दिनों तक उसी राजमहल में रहकर एक दिन अपने लक्ष्य की ओर सहसा नगर से चले गये।

जंगल-मार्ग से होते हुए रास्ते में मिलने वाले अनेकानेक जिनमन्दिरों की वन्दना करते हुए पल्लव देश की सीमा पर चित्रकूट नाम के पर्वत पर स्थित आश्रम में पहुँचे। उस आश्रम में अनेक तापस अज्ञान से जीवहिंसा करते हुए मिथ्यातप धारण किए हुए थे। उनको देखकर जीवन्धर ने कहा-हे तपोधनों! श्रुत में कहा है- 'न हिंस्यात् सर्वभूतानि' अर्थात् किन्हीं भी प्राणियों की हिंसा नहीं करनी चाहिए। समस्त प्राणियों की रक्षा करनी चाहिए। फिर, आप लोग इस हिंसा बढ़ाने वाले तप को क्यों कर रहे हो? उन तापसियों ने जीवन्धर की तर्क-युक्त बात को सुनकर अहिंसामय जैनधर्म स्वीकार कर लिया।

जीवन्धर कुमार द्वारा आभूषणों का त्याग

क्षेमपुरी से प्रस्थान करने के पश्चात् विवेकशील जीवन्धर कुमार को अपने आभूषण दान देने का विचार आया। उन्होंने निश्चित कर लिया कि किसी सुपात्र को ही दान देना है। तभी उनके सामने एक सज्जन, निर्धन किसान आया। किसान का हाल-चाल पूछने के पश्चात् जीवन्धर कुमार ने उसे श्रावकधर्म का उपदेश किया। उसको समझाया कि आत्मा ही अपना है, शरीर भी भिन्न है, पर है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान सहित होकर 5 अणुव्रत, 3 गुणव्रत और 4 शिक्षाव्रत के धारक श्रावक होते हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील एवं परिग्रह-इन पाँचों पापों के एकदेश/आंशिक त्याग को अणुव्रत कहते हैं। जो व्रत अणुव्रतों की अभिवृद्धि में सहायक होते हैं एवं उनमें दृढ़ता लाते हैं, उन्हें गुणव्रत कहते हैं। दिग्व्रत, भोगोपभोग परिमाणव्रत और अनर्थदण्डव्रत को गुणव्रत कहते हैं। जिससे मुनिव्रत पालन करने का अभ्यास बना रहे, उसे शिक्षाव्रत कहते हैं। प्रोषधोपवास, सामायिक, देशव्रत और वैयाव्रत-इन चारों को शिक्षाव्रत कहते हैं। व्रतों का स्वरूप विस्तार से समझाकर उस कृषक को श्रावक धर्म अंगीकार करवाया।

कृषक के श्रावक व्रत स्वीकार करने पर जीवन्धर कुमार ने अपने विवाह में मिले समस्त अलंकार उसको आदरपूर्वक दान स्वरूप प्रदान कर दिए। कृषक को तत्काल धर्मलाभ के साथ ही आभूषणों की प्राप्ति होने से विशेष आनन्द हुआ।

जीवन्धर ने उस आश्रम में रात्रि व्यतीत की। प्रातः उठकर दक्षिण देश में जाकर एक अद्‍भुत सहस्रकूट जिनालय देखा। जैसे-जैसे वह जिनालय के पास पहुँचे, वैसे-वैसे निकट के सरोवर के सभी पुष्प खिल गये। जिनालय को देखने मात्र से उनकी थकावट दूर हो गई। श्रावकों में श्रेष्ठ जीवन्धर श्रद्धा व भक्तिपूर्वक जिनालय के निकट पहुँचे तब जिनालय के दरवाजे सहसा खुल गये। उस जिनालय के दरवाजे बहुत समय से बन्द थे। अपने हाथ में उसी सरोवर के पुष्पों को लेकर वे जिनालय में प्रविष्ट हुए। अपूर्व मणिमय जिनबिम्ब को देखकर भक्तिभाव से उन्होंने मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक जिनेन्द्र भगवान् पूजा की। सच है-

सन्मार्गे भगवन्भक्तिर्भवतान्मुक्तिदायिनी॥क्ष.चू. ६/३४॥

अर्थात् समीचीन मार्ग में की गई भगवान् की भक्ति मुक्तिदायी होती है।

उत्तम-उत्तम स्तोत्रों से, अश्रुपूरित नेत्रों से गद्‍गद होकर भक्ति करने के उपरान्त एक व्यक्ति जीवन्धर के चरणों में आकर गिर पड़ा। उसे उठाते हुए उससे पूछा-'तुम कौन हो? कहाँ से आये हो? और तुम इस प्रकार प्रणाम क्यों कर रहे हो?'

सेवक ने खड़े होकर कहा-नाथ! यहाँ से एक कोस की दूरी पर क्षेमपुरी नगरी है। जिसके राजा 'नरपति' हैं। वहाँ का नगरसेठ सुभद्र बहुत ही दयालु, दानी और पुण्यवान है। उसकी पुत्री के जन्मदिवस पर ज्योतिषियों ने कहा था-'जिस पुरुष के आने पर इस जिनालय के द्वार अपने आप खुल जायेंगे, वही इस कन्या का उत्तम पति होगा।'

गुणभद्र (सेवक) ने बताया कि मुझे इस जिनालय के किवाड़ खोलने वाले महापुरुष का ध्यान रखने के लिए नियुक्त किया गया है। सेवक ने सेठ को भी इस समाचार से परिचित कराया। ससम्मान अपने घर ले जाकर महा उत्सव के साथ सेठ सुभद्र ने अपनी पुत्री 'श्रेमश्री' का विवाह जीवन्धर कुमार से करके अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए अपना कर्त्तव्य पूर्ण किया। जीवन्धर को अपने पूर्वकृत महापुण्य से ऐसे सौभाग्य लाभ स्वत: मिल रहे थे। यह उनका चतुर्थ लाभ था। उस सेठ ने जीवन्धर से कहा था कि जब मैं पहले राजपुर नगर में रहता था, तब राजा सत्यन्धर ने मुझे धनुष और बाण दिये थे, ये आपके ही योग्य है, इसलिए इन्हें आप ही ग्रहण करें। सच है, उत्तम वस्तुएँ उत्तम पात्रों को ही प्राप्त होती है।

प्रश्न 1. जीवन्धर की तृतीय रानी कौन थी?

उत्तर : पल्लव देश के राजा लोकपाल की पुत्री 'पद्मा' तृतीय रानी थी।

प्रश्न 2. चतुर्थ रानी कौन थी?

उत्तर : क्षेमपुरी नगरी के दानी सेठ सुभद्र की 'क्षेमश्री' नाम की कन्या चतुर्थ रानी बनी।

प्रश्न 3. जीवन्धर अकेले अपरिचित स्थान पर रहते हुए, भ्रमण करते हुए कब आनन्दित होते थे?

उत्तर : जब उन्हें अपूर्व-अपूर्व जिनालयों के दर्शन होते थे।

प्रश्न 4. जीवन्धर अपना समय किस तरह व्यतीत करना चाहते थे?

उत्तर : जीवन्धर जिनालयों में भक्ति करके अपना जीवन व्यतीत करना चाहते थे। देखो! जब वह यक्ष के महल में रहे, तब भी उनको यही चिन्ता हुई कि इस समय को व्यर्थ ही यहाँ क्यों व्यतीत करें? क्यों न जिनालयों की वन्दना करके अपूर्व पुण्य का बंध करें?

प्रश्न 5. सम्यग्दृष्टि जीव क्या भगवान् की भक्ति, पूजा करने से बचता है?

उत्तर : नहीं, कभी नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव अत्यन्त भक्तिभाव से पूजा, वंदना करता है। जिस दिन भगवान् की भक्ति, पूजा न कर पाए, उस दिन उसे शोक होता है। वह दिन उसके लिए दुर्दिन होता है। 'दान और पूजा' ही श्रेष्ठ श्रावकों का प्रमुख धर्म होता है। इस धर्म के कारण ही वह धर्मात्मा श्रावक कहलाता है। धर्मात्मा जीव को अपने पुत्र का मरण होने पर भी इतना शोक नहीं होता, जितना कि मुनियों को दान और जिनपूजा न कर पाने पर होता है, ऐसा आचार्य पद्मनन्दी महाराज ने कहा है।

प्रश्न 6. इसका अर्थ तो यह हुआ कि प्रचुर पुण्यबंध करना चाहिए। पुण्यबंध के कार्य कभी भी हेय-बुद्धि से नहीं करना चाहिए।

उत्तर : हाँ, जो पुण्यबंध जिनभक्ति, मुनि को दान देने आदि के द्वारा होता है, वह पुण्यबंध क्रम-क्रम से मुक्ति का कारण बनता जाता है। हेय-बुद्धि से पूजन भक्ति करोगे तो पुण्यबंध भी नहीं होगा। भीतर से पूजन के प्रति हेय-भाव रखने वाला सच्ची भक्ति कर ही कैसे सकता है? वह तो छल कर रहा है। ऊपर से भक्ति कर रहा है, अन्तरंग से हेय-भाव यानि घृणा कर रहा है। सम्यग्दृष्टि जीव जीवन्धर की तरह जब भी समय मिले तभी पुण्यबंध के कार्य में संलग्न हो जाता है। 'चरमशरीरी जीव भी जिस जिनभक्ति में रम रहे हैं, या तो उसी में रमो अन्यथा कष्टों से मरो।'

प्रश्न 7. देखा! तुमने पुण्यात्मा जीवों को अकेले रहने में भी कोई भय नहीं रहता। देवता उनकी सेवा स्वतः अपना कर्त्तव्य समझकर करते हैं?

उत्तर : हाँ! तभी तो जिनालय में वन्दना करने के पश्चात् यक्षिणी देवी ने स्वतः जीवन्धर के लिए भोजन, वस्त्र प्रदान किये। धन्य है यह पुण्य की महिमा और पुण्यात्मा जीव की वृत्ति।

प्रश्न 8. क्या सब पहले से ही सुनिश्चित होता है कि इस पुत्र का विवाह इन-इन राजपुत्रियों से होगा?

उत्तर : हाँ बेटा! कथंचित् निश्चित है, कथंचित् नहीं! जो अतिशय-पुण्य के धारी होते हैं, उनके लिए पूर्व से ही निश्चित होता है। जिनका अतिशय-पुण्य नहीं होता है, उनके लिए अपना पुरुषार्थ जैसा होता है, वैसा लाभ होता है। हीन-पुण्य वालों के लिए ऐसा सुनिश्चित नहीं होता है। इस विषय में यह अनेकान्त जानना।

प्रश्न 9. यह अनेकान्त क्या है?

उत्तर : यह अनेकान्त प्रत्येक वस्तु का स्वाभाविक धर्म हैं। जहाँ-जहाँ अपने को दो विरोधी बातें दिखाई पड़े वहाँ-वहाँ अनेकान्त धर्म से, किसी अपेक्षा विशेष से दोनों धर्मों को स्वीकार करना। ऐसा करने से विरोध दिखेगा परन्तु विरोध होता नहीं है।

प्रश्न 10. यह कैसे सम्भव है, कृपया समझायें।

उत्तर : कोई कहता है-सब कुछ कार्य पुरुषार्थ से होता है। कोई कहता है-सब कुछ भाग्य से होता है। अनेकान्त धर्म कहता है, कथंचित् पुरुषार्थ से कार्य होता है और कथंचित् भाग्य से कार्य होता है। बुद्धिपूर्वक कार्य करने की अपेक्षा कथंचित् कार्य पुरुषार्थ से होता है, यह कहना सच है। अबुद्धिपूर्वक भी कथंचित् कार्य होने की अपेक्षा भाग्य से होता है, यह कहना सच है। जीवन्धर क्षेमश्री का विष दूर करने के लिए बुद्धिपूर्वक वहाँ गए, पुरुषार्थ किया। अबुद्धिपूर्वक अर्थात् उनके बिना विचार किए उस कन्या से विवाह हुआ, यह भाग्य से हुआ। कभी कार्य अधिक पुरुषार्थ करने पर भी नहीं होता है, जब भाग्य साथ नहीं होता है। जैसे किसी विद्यार्थी ने तीन बार कोई कम्पीटीशन एक्जाम दिया, सफलता नहीं मिली। इसलिए कहा कि कथंचित् पुरुषार्थ नहीं, भाग्य कार्य करता है। किसी छात्र ने प्रथम बार परीक्षा दी, सफल नहीं हुआ, द्वितीय बार में या तृतीय

बार में सफल हो गया। तो कहा जाएगा कि कथंचित् पुरुषार्थ कार्य करता है। किसी ने प्रथम बार में ही सफलता प्राप्त कर ली तो कथंचित् पुरुषार्थ और कथंचित् भाग्य दोनों का सही समय पर मेल होने से कार्य हुआ, यह मानना उचित धारणा है। इसी को अनेकान्त धर्म कहते हैं। अनेकान्त स्वरूप को मानना समीचीन ज्ञान है। एकान्त को मानना मिथ्याज्ञान है। सदैव भाग्य से ही सब कुछ होता है, सब कुछ पुरुषार्थ से प्राप्त कर लूँगा, ऐसा एकान्त ज्ञान भी मिथ्याज्ञान है। इसलिए अनेकान्त से बात करो। 'ही' लगाकर नहीं, 'भी' लगाकर बोलो। आचार्य गुरुदेव विद्यासागर जी महाराज ने लिखा है–

'ही' से 'भी' की ओर ही, बढ़े सभी हम लोग।
छह के आगे तीन हो, विश्वशान्ति का योग।।

प्रश्न 11. तो क्या सभी कार्य अनेकान्त से ही होते हैं, कुछ और समझाइये।

उत्तर : हाँ! देखो, विवाह किया, पुरुषार्थ किया। पुत्र हो या पुत्री यह तो भाग्य पर निर्भर है। किसी को बिना इच्छा के पुत्र प्राप्त होते हैं। तो वह कहता है भाग्य से होता है। किसी को धर्माराधना करने पर पुत्र होता है तो वह कहता है कि पुरुषार्थ करने से होता है। वस्तुतः, कार्य पुरुषार्थ और भाग्य (पूर्व के पुण्यकर्म का फल) दोनों के मेल से होता है। भाग्य प्रबल होने पर भी पुरुषार्थ न हो तो कार्य नहीं होता है। अपने आप किसी को संतान नहीं हो जाती, करनी पड़ती है, यह पुरुषार्थ है। किसी को पुरुषार्थ करने से भी नहीं होती है, यह भाग्य हैं। दोनों का सम्बन्ध कार्य का सुफल है।

प्रश्न 12. वर्तमान का विज्ञान भी क्या अनेकान्त मानता है?

उत्तर : अवश्य मानता है। आइंस्टीन का सापेक्षिकता का सिद्धान्त (theory of Relativity), यही अनेकान्त है। इसी आधार पर सूर्य, पृथ्वी की सापेक्ष गति आदि का गणित चल रहा है।

(13)

कुछ दिन 'श्रेमश्री' के साथ रहकर बिना बताए हुए जीवन्धर किसी सुन्दर वनभूमि में जा पहुँचे। मार्ग की थकावट को दूर करने के लिए वह एक शिलातल पर बैठ गये। उसी समय कुछ विशिष्ट सुगन्धि से आकृष्ट होकर उन्होंने पीछे देखा तो एक युवती उन्हें दिखाई दी। ऐसा जान पड़ता था वह बहुत देर से वहाँ खड़ी हो। जीवन्धर को देखकर वह उन पर मोहित हो गयी। जीवन्धर उसके हाव-भाव को देखकर उसकी मनोवृत्ति समझ गए। सामने आने पर जीवन्धर ने उससे पूछा-'तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? परस्त्री से विमुख रहने वाले मुझ जैसे जितेन्द्रिय पुरुष से सोच समझकर अपना अभिप्राय कहना।' उस युवती ने कहा-'मैं सखियों के साथ बगीचे में क्रीड़ा कर रही थी। मेरा कोई एक परिचित मुझे जबरदस्ती पकड़

अपने विमान में चढ़ाकर ले जाने लगा। रास्ते में वह अपनी स्त्री के क्रोध से भयभीत हो गया। उसने मुझे इन वन से गिरा दिया। मैं पापिनी यहाँ घूम रही थी कि सौभाग्य से आपको देख सकी। मैं आपके चरणों की सेवा से अपने आपको कृतार्थ करना चाहती हूँ।'

स्वभाव से धीर, परस्त्री से विमुख जीवन्धर ने कहा–'हे माँ! इस दुर्गन्धित हाड़–माँस से भरे शरीर को पाकर इसमें अत्यधिक राग करना दुर्गति का कारण है।'

उसी समय एक मनुष्य रोता हुआ आ रहा था। वह आवाज दे रहा था–हे प्रिये! तुम कहाँ हो, तुम कहाँ चली गई हो? उसकी आवाज सुनते ही वह युवती जीवन्धर की स्वीकारता न मिलने से कहीं विलीन हो गई। वह पुरुष जीवन्धर से पूछने लगा–'मैं अपनी प्रिया को यहीं बिठाकर गया था। जब तक पानी लेने गया तब तक वह कहाँ चली गई। मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आपने उसे देखा है? मेरा नाम भवदत्त है तथा मेरी पत्नी अनंगतिलका है। वह मुझे नहीं मिल रही है। उसके बिना मैं व्याकुल हूँ।'

उस विद्याधर की दीनता को देखकर जीवन्धर से उसे समझाया कि तुम कैसे विद्याधर हो? ऐसी विद्या किस काम की जो मनुष्य को क्लेश–गर्त में डाल दे? आप स्त्रियों की चंचलता को नहीं समझते हैं? बहुत समझाने पर भी वह शान्त नहीं हुआ और उस युवती को ढूँढने चल दिया। जीवन्धर स्त्री की माया को मन में विचार करते हुए अपने चरित्र में और अधिक दृढ़ हो गए।

तदनन्तर चलते हुए जीवन्धर कुमार ने 'हेमाभा नगरी' में प्रवेश किया। वहीं एक सुन्दर बगीचे में देखा कि एक युवक बाण से बार–बार आम के फल को तोड़ने का प्रयास कर रहा है किन्तु असफल रहता है। युवक को देखने के बाद, उसकी खिन्नता को दूर करने के लिए जीवन्धर कुमार ने उस युवा से धनुष अपने हाथ में

लिया। उन्होंने उस धनुष को फिर से खींचकर डोरी से सहित किया और अल्प प्रयास से एक बाण चलाया। वहाँ खड़े-खड़े ही दूसरे हाथ से फल के साथ आए उस बाण को पकड़ लिया। धनुष चलाने की इस निपुणता को देखकर उस युवा ने आदर से याचना की– 'हे मित्र! यह हेमाभा नगरी है जिसके राजा दृढ़मित्र मेरे पिता हैं, मेरी माता का नाम नलिना है। उन दोनों के सुमित्र आदि अनेक पुत्रों में से मैं ज्येष्ठ पुत्र हूँ। पिताजी बहुत समय से धनुर्विद्या में निपुण विद्वान् को खोज रहे हैं। इसलिए आपको उनके समीप चलना चाहिए। 'तथाऽस्तु'–कहकर जीवन्धर राजभवन की ओर चल दिये। राजभवन में पहुँचकर सुमित्र के द्वारा परिचय देने से राजा दृढ़मित्र के मन ही मन में आदरभाव बढ़ गया। राजा ने जीवन्धर के गुणों को जानकर उनसे प्रार्थना की–'आप मेरे अज्ञानी पुत्रों को शिक्षित बना दें। इस अनुग्रह से जीवन्धर वहीं रुक गये और सच्चे हृदय से विद्या सिखाई जिससे वे राजकुमार धनुर्विद्या में निपुण हो गये जिसके कारण राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए।धीरे-धीरे राजा की प्रीति जीवन्धर में बढ़ने लगी। एक दिन राजा ने कहा–'निमित्तज्ञानियों ने कहा था कि हमारी पुत्री किसी क्षत्रिय धनुर्विद्या के निष्णात आचार्य की स्त्री होगी। मुझे यह बात आप में दिखती है, इसीलिए मेरी पुत्री को स्वीकार करें।' जीवन्धर ने इस सम्बंध को स्वीकार करके 'कनकमाला' से विवाह किया और कुछ दिन वहाँ रुककर सभी को आनन्दित किया। यह जीवन्धर को पाँचवे लाभ की प्राप्ति हुई।

प्रश्न 1. इस प्रसंग से आपने क्या सीखा?

उत्तर : अहो! महापुरुष कितने विवेकी और चरित्रवान होते हैं। जो स्त्री उन्हें एकान्त जंगल में मिली हो, उसे उन्होंने मातृवत् स्वीकारा परन्तु जो स्त्री राजा ने विनयपूर्वक प्रदान की, वह उन्होंने पत्नी बनाकर स्वीकार की थी।

प्रश्न 2. इतनी स्त्रियाँ होते हुए भी उन्हें सच्चरित्रवान् क्यों कहा?

उत्तर : वह केवल अपनी स्त्री में ही अनुराग करते हैं। परस्त्री को माँ, बहिन की तरह देखते हुए व्यवहार करते हैं। एक से अधिक पत्नी होना क्षत्रिय राजाओं की एक पहचान है। सच्चरित्रवान् इसीलिए है कि वे स्वदार (अपनी पत्नी) सन्तोषव्रत को धारण करने वाले हैं। एकान्त में भी वे विकार को प्राप्त नहीं हुए, यह उनकी सच्चारित्रता का उदाहरण है।

प्रश्न 3. यदि आज कोई व्यक्ति एक से अधिक स्त्रियों के साथ सम्बंध रखता है, तो इसमें बुरा क्या है?

उत्तर : पापभाव से लुकाछिपी केवल दैहिक आनन्द के लिए सम्बंध बनाना चरित्रहीनता है। यह बहुत बड़ा पापभाव है। राजा लोग अपने भाग्य से प्राप्त हुई स्त्रियों को एक साथ रखते थे और सभी के साथ सरल व्यवहार करते थे। आज का व्यक्ति इतना पुण्यवान नहीं होता है कि उसे चरित्रवान स्त्री सहज प्राप्त हो जाये। आज आदमी या तो पहली स्त्री को छोड़कर, तलाक देकर दूसरी स्त्री अपनाता है या फिर वह स्त्री भी यदि त्यक्ता होती है तो उसे स्वीकार करता है। ये दोनों ही पाप हैं और नैतिकता से विपरीत कार्य हैं।

प्रश्न 4. क्या पुरुष किसी की छोड़ी हुई स्त्री से भी विवाह नहीं कर सकते हैं?

उत्तर : नहीं। नीतिवान् कुलीन पुरुष न तो छोड़ी हुई स्त्री से विवाह करता है और न विधवा स्त्री से विवाह करता है। ये दोनों ही प्रकार की स्त्री झूठन होती है। इसे ग्रहण करने वाला या तो कुत्ता होता है या कौआ। जैसे एक विधवा कहती है–

मैं पति की झूठन भई भोग न जोग न आन।
मेरी जो इच्छा करे कै काका कै श्वान।।

प्रश्न 5. यदि किसी पुरुष की स्त्री कम उम्र में ही मर जाय तो क्या वह व्यक्ति दूसरा विवाह कर सकता है?

उत्तर : पहले तो उत्कृष्ट मार्ग यह है कि वह संसार की असारता को समझकर आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर अपना धर्मध्यान से समय गुजारे। यदि सम्भव न हो तो विवाह किसी कुमारी कन्या के साथ ही करे। किसी की स्त्री चाहे वह त्यक्त हो या विधवा हो, उससे विवाह करना अनुचित और अधर्म है। ऐसे व्यक्ति मुनिराज के लिए आहारदान देने के भी योग्य नहीं होते हैं।

(14)

जिस समय जीवन्धर हेमाभपुरी से प्रस्थान करने की सोचने लगे, उसी समय कनकमाला को स्वप्न में अपने स्वामी का वियोग जानने में आया। दु:खी हुई कनकमाला को जीवन्धर ने समझाया और सांत्वना दी। उसी समय एक महिला आदर के साथ जीवन्धर के पास आकर आश्चर्य से बोली—अरे कुमार! जब मैं आयुधशाला की ओर आ रही थी तो वहाँ सोते हुए किसी पुरुष को देखकर 'वो आप ही हैं! ऐसे आश्चर्य में पड़ गयी। मैंने सोचा कनकमाला ने तुम्हें नाराज किया होगा इसलिए तुम वहाँ जाकर सो गए। इसी कारण मैं तो कनकमाला को डाँटने आयी थी, पर आप तो यहाँ हैं, फिर वह कुमार कौन है?'

उस नारी के वचन सुनते ही कुमार ने विचार किया कि अवश्य ही गन्धर्वदत्ता ने नन्धाढ्य को भेजा होगा । जीवन्धर कुमार आयुधशाला की ओर चल पड़े। वहाँ नन्धाढ्य कुमार के समक्ष उपस्थित हो गये। नन्धाढ्य ने बड़े आदर के साथ कुमार को प्रणाम कर, चरण स्पर्श कर अश्रुओं से बड़े भाई के चरणों का मानो प्रक्षालन ही किया हो। कुमार ने नन्धाढ्य को उठाकर गले लगा लिया और बड़ी उत्सुकता से घर का समाचार पूछा। ठीक ही कहा है—

नाधिकं प्रीतयेऽत्रान्यत्प्रीतसोदर्यसंगमात्।।उ.पु. ७५/४३७।।

इस संसार में प्रसन्नता से भरे हुए दो भाइयों के समागम से बढ़कर और कोई दूसरी वस्तु प्रीति उत्पन्न कराने वाली नहीं है।

नन्धाढ्य ने पूर्व घटनाओं को सुनाते हुए कहा कि जब आपको काष्ठंगार की आज्ञा से वध करने ले जाया जा रहा था उसी समय हम पद्मास्य आदि मित्रों को साथ लेकर युद्ध करने के सम्मुख हुए। तभी ज्ञात हुआ कि अकस्मात् कोई दिव्य-शक्ति आपको लिए जा

रही है। हम लोग दुःखी हुए। शोक में डूबने से पहले गन्धर्वदत्ता के पास गया और मैंने देखा कि वह ऐसे कष्ट के समय में अपनी वीणा से निरन्तर अर्हन्त परमेष्ठी का स्तवन करते हुए वियोगजनित शोकसागर को पीछे ढकेल रही है। गन्धर्वदत्ता ने ही मुझे समझाया कि आप लोग दुःखी न होवें। तुम्हारे भाई को कृतज्ञ कुत्ते का जीव, वह यक्षेन्द्र अपने महल में ले गया है। उसके बाद में उन्हें हर जगह नये-नये लाभ मिल रहे हैं। वे सुखी हैं। बहुत दिनों बाद जब मुझसे आपका विरह सहन नहीं हुआ तब मैं गन्धर्वदत्ता से कुछ उपाय पूछने गया। उसने अपने मन्त्र से मन्त्रित किसी शय्या पर मुझे शयन करने को कहा तथा अपने पत्र के साथ मुझे यहाँ भेज दिया। कुमार ने पत्र पढ़ा जिसमें गुणमाला के विरह जन्य दुःख का उल्लेख था जो मानो स्वयं गन्धर्वदत्ता के विरह-वेदना की अभिव्यक्ति थी। गन्धर्वदत्ता आदि के शोकाकुल दुःख की दशा को समझकर अपने घर की ओर चलने का निर्णय किया।

दृढ़मित्र महाराज ने दोनों भाइयों का मिलन हो जाने से अपने परिवारजनों के साथ उनका खूब अभिवादन किया। कुछ दिनों के आतिथ्य के बाद समाचार मिला कि कुछ लोग अहीरों पर लूटपाट करते हुए गायों को चुराकर कहीं ले जा रहे हैं। बहुत बड़ी सेना के साथ उत्पात मचाते हुए वे लोग इस राज्य की ओर ही बढ़ रहे हैं। राजा दृढ़मित्र ने युद्ध की तैयारी की। उसी समय बड़ों का आदर करने वाले जीवनधर ने अपने भाई नन्धाढ्य को सारथी बनाकर युद्धरथ में बैठकर इस युद्ध को करने की आज्ञा दृढ़मित्र से मांगी। बड़े वेग के साथ दोनों सेनाओं का आमना-सामना हुआ। धनुष की टंकार मात्र से ही वे चोर समझ गए कि जीवन्धर कहीं समीप में ही है। उन चोरों ने अपने पद्मास्य आदि नामों से अंकित वाण छोड़े। फिर जीवन्धर की सेना शान्त हो गई। तभी सभी मित्रों ने निकट

में आकर जीवन्धर को प्रणाम किया। सभी बड़े मेलमिलाप के साथ दृढ़मित्र के महल में आए।

कहीं इन लोगों को मेरे बारे में पता तो नहीं पड़ गया, इस बात की जानकारी के लिए कुमार ने एक दिन अपने मित्रों से यात्रा मार्ग के बारे में पूछा। मित्रों में श्रेष्ठ पद्मास्य ने कहा–

राजपुरी से चलकर तीन–चार दिन में हम दण्डक वन में आए। उस समय हम लोग घोड़े बेचने वाले लोगों का भेष बनाकर निकले थे। अनेक विशेषताओं से सहित एक आश्रम में हम लोगों ने जगन्माता के दर्शन किए। उन्होंने हमसे पूछा तुम लोग कहाँ से आए हो, कौन हो? उत्तर में हमने सब वृत्तान्त सुना दिया। काष्ठांगार नीच के द्वारा आपके मारने के लिए दिए आदेश का वर्णन जैसे ही सुना रहे थे, तभी उसका असह्य दु:ख देखकर हम लोग द्रवित हो गए। तभी हमने माता से कहा–'आप निश्चिन्त रहें। कुमार जीवित हैं, उनको यक्षदेव लेकर गया है। वे सुरक्षित हैं और हम लोगों की काष्ठांगार को यमलोक पहुँचाने की आशा पूर्ण करने के लिए जीवित हैं। हम उन्हीं को ढूँढने निकले हैं। फिर हमने गाय चुराने वालों का भेष धारण किया और अनेक नगर–पर्वतों को लांघते हुए आपके शुभ दर्शन पाए हैं।

प्रश्न 1. यह नन्धाढ्य कौन है?

उत्तर : यह गन्धोत्कट सेठ का पुत्र है। आप भूल गए कि सेठ को जब मृतपुत्र होते थे तब मुनिराज ने उससे कहा था कि तुम्हें श्मशान में एक राजपुत्र मिलेगा। उसका पालन करने के बाद तुम्हें अपने पुत्रों का जीवन देखने मिलेगा। गन्धोत्कट ने जीवन्धर का लालन–पालन किया। बाद में उसे सुनन्दा सेठानी से नन्धाढ्य पुत्र की प्राप्ति हुई। दोनों भाई बड़े प्रेमभाव से एक साथ पढ़े–लिखे और बड़े हुए थे।

प्रश्न 2. यह पद्मास्य कौन है जो अपनी सेना लेकर जीवन्धर के पास आया?

उत्तर : अरे! तुम भूल गए। यह पद्मास्य भी जीवन्धर का अनन्य मित्र है। जब गायों की रक्षा करके कुमार आए थे तब नन्दगोप ने अपनी पुत्री का जीवन्धर से विवाह करना चाहा, तभी जीवन्धर ने अपने इस मित्र के लिए उस कन्या से विवाह करवा दिया था। यह वही पद्मास्य मित्र है।

प्रश्न 3. क्या मंत्र में इतनी शक्ति होती है कि वह एक देश से दूसरे देश में ले जाकर पहुँचा दे?

उत्तर : हाँ बेटा! गन्धर्वदत्ता विद्याधर राजा की पुत्री थी। विद्याधर लोगों को ऐसी विद्यायें कुछ तो अपने वंश से प्राप्त होती हैं। कुछ सिद्ध भी करते हैं। विद्याधर लोग विद्यासिद्धि करके अनेक विद्याओं को पास में रखते हैं, इसीलिए ये विद्याधर कहलाते हैं।

प्रश्न 4. विद्यायें क्या देवी-देव ही होते हैं?

उत्तर : हाँ देव गति के देव-देवी ही विद्यासिद्धि के रूप में सिद्ध हो जाते हैं और इनकी अनेक प्रकार की सहायता करते हैं।

प्रश्न 5. जब गन्धर्वदत्ता के पास ऐसी विद्या थी तो वह स्वयं क्यों नहीं कुमार के पास चली गई या उसने तुरन्त ही अपने परिजन को कुमार के पास क्यों नहीं पहुँचा दिया?

उत्तर : सुशील स्त्रियाँ इस तरह घूमना, आना-जाना नहीं करती हैं। सभ्य शीलवती नारियाँ अपने घर से अपने बड़ों के साथ बिना, परिचितों या अपने पति के साथ बिना बाहर नहीं निकलती हैं। देखो! सीता भी उतावली होकर लंका से हनुमान के साथ नहीं आई। उन्हें पतिदेव लेने स्वयं आए थे। इसीलिए गन्धर्वदत्ता भी चिन्ता रहित थी। दूसरी बात, अन्य देश में जाने से और अनेक राजा आदि परिचित होते हैं। कन्या लाभ होगा जिससे राजशक्ति बढ़ती है, यह

जानकर उसने शीघ्रता नहीं की। तीसरी बात, विद्या मन्त्र की भी शर्त होती है कि वे केवल पुरुष को ही इच्छित स्थान पर ले जाएगी या स्त्री को ही या एक को ही या अनेक को भी ले जाएगी। इस तरह विद्यायें अनेक प्रकार की शक्ति अनुसार काम करती हैं। जैसे आपके मोबाइल में सुविधायें अलग-अलग कम्पनी की अलग-अलग प्रकार की होती हैं। उनकी रेंज अलग-अलग रहती है, उसी प्रकार विद्याओं के विषय में जानना चाहिए।

(15)

पद्मास्य के इस वृत्तान्त को सुनाने पर हर्ष से गद्गद होकर जीवन्धर कहने लगे–'मुझ अधम नर ने अभी तक अपनी माँ को नहीं देखा, मेरी माँ जीवित है और मुझे पता नहीं।' इसके बाद कुमार ने अपने श्वसुर आदि की अनुमति लेकर मित्रों के साथ दण्डक वन की ओर चलने का निश्चय किया। कनकमाला को सांत्वना दी कि केवल एक माह तक धैर्य रखो, उसके बाद सब ठीक हो जाएगा। परिजनों ने भावभीनी विदाई के साथ जीवन्धर को विदा किया। सच ही है–

जीवानां जननीस्नेहो न ह्यन्यैः प्रतिहन्यते॥क्ष.चू. ८/४८॥

अर्थात् निश्चय से प्राणियों का मातृ-प्रेम दूसरे कारणों से नष्ट नहीं होता है।

जीवन्धर उस आश्रम में पहुँचे। वहाँ उन्होंने शोक से दुर्बल, सन्ताप से पीड़ित और किसी दूरवर्ती आशा से मानो जिसने प्राण ही नहीं छोड़े, ऐसी वीरांगना-सम साहस और धैर्य की मूर्ति, पति प्राणनाथ के अभाव में भी अपने व्रत-शील की प्राणों सम रक्षा करने वाली ममता की मूर्ति देखी। सामने जाकर बड़े आदर से प्रणाम किया। माँ ने बिना किसी के परिचय दिये ही जीवन्धर को स्नेहपूर्वक अपने अंक में भर लिया। फिर नन्धाढ्य को गोद में छिपा लिया। अश्रुपूरित और हर्षित वातावरण में सभी जन माँ और पुत्र के सौभाग्य की सराहना करने लगे। उसी समय यक्षदेव ने आकर जीवन्धर कुमार को उत्तम आभूषण, वस्त्र आदि देकर सत्कार किया। माता विजया देवी ने पूर्व की सभी घटना जीवन्धर को सुनाई। जीवन्धर को यद्यपि उसी समय क्रोध उत्पन्न हुआ, किन्तु उन्होंने गुरु के वचनों को याद करते हुए कहा–'माँ! कुछ समय और प्रतीक्षा करें। तुम्हें राजपुरी की राजमाता शीघ्र ही बनाऊँगा। आपस में एक-दूसरे के परिचय के साथ बहुत

समय व्यतीत हुआ। तदुपरान्त एकान्त में अपने कार्य का विचार करके कुमार ने माता को मामा के घर भेज दिया और स्वयं मित्रों के साथ राजपुरी की ओर चल पड़े। देखो! पूर्वकृत कर्म का फल सभी को भोगना पड़ता है। जीवन्धर ने पूर्वभव में हंस के बच्चे को उसके माता–पिता से सोलह दिन तक अलग किया था, उसी के फलस्वरूप उन्हें सोलह वर्ष बाद अपनी माँ से मिलना हुआ। तत्पश्चात् जीवन्धर कुमार मार्ग में नदी, पर्वतों, विचरते हुए पशु–पक्षियों के स्नेह को देखते हुए पुरानी स्मृतियों के साथ राजपुरी नगरी के समीप पहुँचे। एक महल के ऊपर सुन्दर कन्या को देखकर उन्होंने वहीं रुकने का विचार किया। तभी उस घर के सेठ ने आकर कहा–'हे कुमार! मैं सागरदत्त हूँ। मेरी पत्नी कमला है और पुत्री का नाम 'विमला' है। उस पुत्री के उत्पन्न होने पर ज्योतिषियों ने कहा था कि जिस महात्मा के अपने घर में आने पर क्षणभर में बिना खरीद के सजी हुई मणियों की बिक्री हो जाए, यह कन्या उसी की पत्नी होगी। आपके घर आते ही मेरी यह रत्नों की राशि बिक गयी है जो कि खरीददार नहीं होने के कारण पहले से सजी रखी थी। इसीलिए हे भाग्यशालिन्! आप मेरी कन्या से विवाह करके मुझे भी भाग्यशाली बनायें। इस प्रार्थना से जीवन्धर कुमार ने उस 'विमला' को स्वीकार कर विवाह किया। यह कुमार का छठा लाभ था।

प्रश्न 1. क्या ऐसा होता है कि जो सोचा, वह तुरन्त पूर्ण हो जाए? जैसे कि कुमार ने विमला को चाहा और उसे तुरन्त सेठ ने दे दिया?

उत्तर : हाँ भाई! जब तीव्रतम पुण्य का उदय आता है, तब मन की इच्छा तुरन्त पूर्ण हो जाती है। जैसे भोगभूमि के जीव कल्पवृक्ष के समक्ष जो भी इच्छा करते हैं, वह उन्हें उपलब्ध हो जाता है। जिनका पुण्य मध्यम होता है उन्हें पुरुषार्थ करने पर कुछ

समय बाद फल की प्राप्ति होती है। जिनका पुण्य जघन्य गुणवत्ता का है, उन्हें बहुत अधिक पुरुषार्थ से और बहुत समय बाद कुछ फल प्राप्त होता है।

प्रश्न 2. क्या पुण्य ही धर्म है या धर्म अलग और पुण्य अलग होता है?

उत्तर : इस प्रश्न का उत्तर भी अनेकान्त पद्धति से समझना। कथंचित् पुण्य भी धर्म है और कथंचित् पुण्य तथा धर्म में अन्तर है।

प्रश्न 3. फिर किस अपेक्षा से पुण्य और धर्म एक नहीं है?

उत्तर : जब तक शुभोपयोग की दशा रहती है तब तक शुभोपयोग की अपेक्षा पुण्य धर्म है। शुद्धोपयोग की दशा में शुद्धोपयोग की अपेक्षा रत्नत्रय ही धर्म है।

प्रश्न 4. यह शुभोपयोग, शुद्धोपयोग क्या है?

उत्तर : आत्मा उपयोग स्वभाव वाला है। उस उपयोग की परिणति तीन प्रकार से होती है।

1. अशुभोपयोग:–जब आत्मा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का श्रद्धान न करे, विषय-कषायों में लीन रहे, दुश्चिन्तन करे, दु:संगति करे और व्यसनों में आनन्द ले, उस आत्मा का अशुभोपयोग है।

2. शुभोपयोग:–जब आत्मा सच्चे देव, शास्त्र, गुरु की आराधना करे, निरन्तर शास्त्र स्वाध्याय करे, व्रत, उपवास आदि में रुचि रखे, सदाचरण से पाप की कमी या पाप के बिना रहे, तब उस आत्मा का शुभोपयोग है।

3. शुद्धोपयोग:–जब आत्मा पाप का त्याग करके श्रमण बनकर पुण्य क्रिया को भी छोड़कर, आत्मध्यान में लीन होवे तब उस आत्मा का शुद्धोपयोग है।

प्रश्न 5. इसका अर्थ हुआ कि गृहस्थ श्रावक को तो शुभोपयोग ही हो सकता है, शुद्धोपयोग नहीं?

उत्तर : हाँ! छहढाला में भी कहा है–

द्विविध संग बिन शुद्ध उपयोगी मुनि उत्तम निज ध्यानी।

अर्थात् द्विविध–दोनों प्रकार अन्तरंग और बहिरंग, संग–परिग्रह

दोनों प्रकार के परिग्रह के बिना निज ध्यानी अर्थात् आत्मध्यानी मुनि शुद्धोपयोगी है। अन्य सभी अशुभोपयोगी या शुभोपयोगी है।

प्रश्न 6. क्या गृहस्थ श्रावक की अपेक्षा पुण्य ही धर्म है और आत्मध्यानी मुनि की अपेक्षा आत्मा का ध्यान ही धर्म है?

उत्तर : हाँ, बिल्कुल ठीक समझा। यह पुण्य ही धर्म है, इसलिए आचार्य कहते हैं– 'पुण्यं कुरुष्व' अर्थात् पुण्य करो। 'पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम्' पुण्यार्थियों को चार प्रकार के पुण्य का अर्जन करना चाहिए।

प्रश्न 7. चार प्रकार का पुण्य कौन सा है?

उत्तर : एक श्लोक याद कर लो। इसे आचार्य जिनसेन महाराज ने आदिपुराण में लिखा है–

पुण्यं जिनेन्द्रपरिपूजनसाध्यमाद्यं
पुण्यं सुपात्रगतदान–समुत्थमन्यत्।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपवासयोगात्
पुण्यार्थिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम्।।आ.पु. २८/२१९।।

1. जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने से उत्पन्न होने वाला पहला पुण्य है।

2. सुपात्र (उत्तम पात्र–मुनि) को दान देने से उत्पन्न हुआ, दूसरा पुण्य है।

3. व्रतों का अनुचरण करने से उत्पन्न हुआ, तीसरा पुण्य है।

4. उपवास, योग (सामायिक आदि) करने से उत्पन्न हुआ, चौथा पुण्य है।

पुण्य चाहने वालों को ये चारों ही पुण्यों का संचय करना चाहिए।

प्रश्न 8. मेरा मित्र तो कहता है कि पुण्य तो बंध का कारण है, इसलिए हमें पुण्यबंध हेय मानना चाहिये? पुण्य से बचना चाहिये?

उत्तर : बेटा! यदि पुण्यबंध हेय हो जाएगा तो फिर करोगे क्या? पंचमकाल में ऊपर लिखे हुए चार कार्य ही हो सकते हैं। यदि ये चार कार्य नहीं किए तो नियम से पाप का बंध होगा। पाप का बंध नरक, निगोद का कारण है।

प्रश्न 9. मेरा मित्र कहता है अपने को सम्यग्दर्शन करना, आत्मा का अनुभव करना चाहिए?

उत्तर : बेटा! सम्यग्दर्शन ऊपर कहे चार कारणों से ही होता है। रही बात आत्मानुभव की, सो वह तो ध्यान में होता है। ध्यान कभी गृहस्थों को नहीं होता है। बेटा! ऐसा मित्र एकान्तवादी है, उससे दूर रहना। ऐसे लोग केवल बातें करते हैं, करते कुछ नहीं हैं।

प्रश्न 10. क्या ऐसा भी कहा है कि यह पुण्य ही गृहस्थों का धर्म है?

उत्तर : हाँ! हाँ बेटा! आजन्म दिगम्बर रहने वाले महान् आचार्य जिनसेन महाराज आदिपुराण में कहते हैं–

दानं पूजां च शीलं च दिने पर्वण्युपोषितम्।
धर्मश्चतुर्विधः सोऽयमाम्नातो गृहमेधिनाम्।। आ.पु. ४१/१०४।।

अर्थात् दान, पूजा, शील और पर्व के दिनों में उपवास करना यह चार प्रकार का धर्म है जो गृहस्थों के लिए कहा गया है।

प्रश्न 11. अहो! कितना सुन्दर श्लोक है, इसे तो याद करने का मन होता है।

उत्तर : बेटा! इस तरह का विचार मन में होना ही मन की पवित्रता है। ऐसे आचार्य-वचनों को याद करने से ज्ञान का क्षयोपशम और अधिक बढ़ता है।

प्रश्न 12. आपने ऊपर प्रश्न 10 में उत्तर देते हुए आचार्य जिनसेन को 'आजन्म दिगम्बर' कहा, इसका क्या मतलब है?

उत्तर : बेटा! जब ये बच्चे थे, तब नग्न ही रहते थे। थोड़ा बड़ा होने पर नग्न ही खेलते देखकर एक गुरु महाराज इन्हें गुरुकुल में पढ़ाने ले गए। वहाँ भी नग्न रहकर विद्याध्ययन किया। फिर दिगम्बर दीक्षा लेकर महान् आचार्य बने। इस तरह इतिहास में ये ही एक महान् आचार्य हुए हैं, जिन्होंने जन्म के बाद कभी शरीर पर वस्त्र नहीं पहना। इसलिए उन्हें आजन्म दिगम्बर कहा जाता है।

प्रश्न 13. अहो! हमें तो आज यह बात मालूम हुई कि इतने महान् साधु भी हुए हैं?

उत्तर : हाँ बेटा! ऐसे और भी महान् आचार्य हुए हैं, जिनकी अपनी-अपनी विशेषतायें हैं। हमें इन सभी महान् आचार्यों पर अत्यन्त श्रद्धाभाव रखना है। यही हमारी इन गुरुओं की सेवा है।

(16)

जीवन्धर के इस महाभाग्य से उनके भाई और मित्र भी आश्चर्य करते थे। पद्मास्य मित्र ने कहा–आपका सौभाग्य समस्त संसार में अद्वितीय है। आप नगर–नगर में स्वयं स्त्रियों द्वारा वरण कर लिए जाते हो। मित्रों की इस चर्चा में एक 'बुद्धिषेण' नाम का मित्र था जो हास्य करने में निपुण था। वह व्यंग्य करते हुए बोला–'इसमें क्या सौभाग्य की बात है। जिन स्त्रियों को किसी ने विवाहा नहीं, उनसे विवाह करने में कौन सी बड़ी बात है। जो स्त्री किसी को चाहे नहीं, उसका वरण करो तो जाने कि कुछ सौभाग्य है। जीवन्धर कुमार ने पूछा–ऐसी स्त्री कौन है? तब मित्र ने कहा कि इसी 'राजपुरी' की सुरमञ्जरी है। जिसने पुरुषों का दर्शन करना भी छोड़ रखा है। जो अतिसुन्दर है। ऐसी कन्या से विवाह करें तो सौभाग्य समझें। बुद्धिषेण की बात सुनकर जीवन्धर ने मन्द–मन्द मुस्कराते हुए कहा–'थोड़े ही समय में यदि मैं उसे प्राप्त न कर लू तो मैं भी तुम्हारी तरह सौभाग्य–रहित कहलाउँगा।'

नगर में प्रवेश करते हुए जीवन्धर ने सुदर्शन यक्ष के द्वारा दिए गए मंत्र की सहायता से एक वृद्ध का रूप बनाया जो मानो मरा हुआ ही हो। मुख पर सिकुड़न, जर्जरित शरीर, मुख से टपकती हुई लार, हाथ में कँपती हुई लाठी टिकाते हुए, बार–बार रास्ते में गिरते–उठते कराहते हुए वह वृद्ध सुरमञ्जरी के महल के पास पहुँचा। द्वार पर खड़ी स्त्रियों ने उस वृद्ध को भीतर जाने से रोका तथा घृणा से पूछा–'कौन है तू, कहाँ से आया है? यहाँ क्यों चला जा रहा है?' इस प्रकार डाँटने पर भी धीरे–धीरे किसी की परवाह न करते हुए वह वृद्ध भीतर की ओर बढ़ता चला जा रहा है। सत्य ही कहा है–

वार्धकं हि विरक्तये॥क्ष.चू. ९/११॥

निश्चय से बुढ़ापा विरक्ति के लिए ही होता है।

वृद्ध कहने लगा–'सुना है, यहाँ एक कुमारी रहती है। उसके देखने से हमारी वृद्धावस्था दूर हो जाएगी। उस 'कुमारी तीर्थ' में स्नान से इस वृद्धावस्था को दूर करने आया हूँ।' द्वार पर खड़ी सभी रक्षिका स्त्रियाँ हँसने लगी। आपस में कहने लगीं–'मरा जा रहा है और कुमारी को देखने की इच्छा है। वाह रे बुढ़ापे।' उसकी वृद्धावस्था पर सभी को दया आयी।

'इसे रोके कैसे? हाथ लगाते ही कहीं मर न जाये', इसी भय से उन रक्षिका स्त्रियों ने राजकुमारी को उस वृद्ध के विषय में कहा– 'राजकुमारी! क्षमा करें। एक अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण भिक्षा के लिए आपके कक्ष में आ रहा है। 'ब्रह्महत्या' का पाप न लग जाए इसलिए हमने उसे नहीं रोका। सच है–

स्वाम्यधीना हि किंकराः।।क्ष.चू. ९/१९।।

नौकर अपने स्वामी अधीन होते हैं।

उस वृद्ध को देखकर सुरमञ्जरी ने कहा–'कोई बात नहीं। उसे आदरपूर्वक भोजन कराओ।' राजपुत्री के आदेश से सेविकाओं ने स्वर्ण की झारी के जल से वृद्ध के पैर धुलाकर स्वर्णथाल में अच्छा मिष्ट स्वादिष्ट भोजन कराया। भोजन करके वह वृद्ध वहीं सो गया। सुरमञ्जरी ने कहा–'बेचारे को आज बहुत दिन बाद भोजन मिला है, इसलिए उसे सो लेने दो।' यह बुढ़ापा बड़े क्लेश का कारण है। सुरमञ्जरी सखियों के साथ वहाँ से चली गयी। जाते समय उसे पश्चात्ताप भी हुआ–'मैंने पुरुष को देखना छोड़ रखा था, फिर भी मैंने विशिष्ट–वृत्ति को धारण करने वाला यह पुरुष देखा है। किसी समय क्या इसी तरह उस पुरुष का दर्शन भी सम्भव हो सकेगा जिसने कि चूर्ण परीक्षा में मेरी उपेक्षा की थी?'

तदनन्तर शाम के समय उस वृद्ध ने मोहित करने वाला गीत गाना प्रारम्भ किया। सुरमञ्जरी उस गीत को सुनकर सखियों के साथ

वृद्ध के पास गई और पूछा कि यद्यपि आप अत्यन्त वृद्ध है फिर भी आपका यह गायन जीवन्धर की निर्दोष गीत विद्या का स्मरण करा रहा है। आपके पास यह विद्या या अन्य विद्या को भी प्राप्त कराने का उपाय यदि हो तो मुझे भी प्राप्त करायें। सुरमञ्जरी की बात सुनकर उस बूढ़े ने बड़े अभिनय (एक्टिंग) के साथ तकिये से अपना सिर ऊपर उठाया, बूढ़ी आँखों को बड़े कष्ट से खोला, कण्ठ से बार-बार कफ को खखारते हुए घर्घर आवाज में कहने लगा–'यह गाना तो बिना प्रयास के ही सिद्ध हो सकता है। यदि तू विश्वास करे और बात माने तो असाध्य कार्य भी अपने हाथों में आया हुआ, देख सकती है।'

सुरमञ्जरी ने बड़ी दीनता से विनय के साथ कहा–'आप जैसे निस्पृही, परहित में तत्पर रहने वालों की बात कौन नहीं मानेगा?' वृद्ध ने कहा कि यदि ऐसा है तो सुनो, यहाँ सड़क के उस पार एक कामदेव का मन्दिर है। आज या कल यदि तू उस कामदेव का दर्शन करेगी तो तेरा मनोरथ अवश्य सिद्ध होगा। ठीक है, बड़ी उत्कण्ठा से सुरमञ्जरी ने कहा कि मैं कल सुबह वहाँ जाऊंगी।

प्रातःकाल उठकर अपनी सखियों के साथ सुरमञ्जरी उस मन्दिर में पहुँची। वृद्ध भी गाड़ी में बैठकर साथ गया। वृद्ध ने कहा– 'तू अकेली ही जाकर इस देव से अपनी मनोकामना का वरदान मांग ले।' उसने देव से मांगा कि जीवन्धर मेरे प्राणनाथ बन जाएँ। सच है–

जन्मान्तरानुबन्धौ हि रागद्वेषौ न नश्यतः॥क्ष.चू. ९/३२॥

अर्थात् निश्चित ही जन्म-जन्मान्तर से बंधे हुए राग, द्वेष नष्ट नहीं होते हैं।

उसी समय जीवन्धर कुमार ने अपना वास्तविक रूप धारण कर मन्दिर में प्रवेश किया। जीवन्धर को देख जब वह सुरमञ्जरी जाने लगी, तो कुमार ने उसे सब यथार्थ बता दिया और कहा–'मेरा अपराध क्षमा किया जाय।' तत्पश्चात् कुबेरदत्त सेठ ने यह जानकर कि मेरी बेटी को उसकी इच्छानुसार पति की प्राप्ति हो गयी है, उसका विवाह कर दिया। कुमार को यह सातवें लाभ की प्राप्ति हुई। बुद्धिषेण आदि मित्रों ने कुमार के सौभाग्य की प्रशंसा की। 'शीघ्र ही अपने आवश्यक कार्य से हमें आगे जाना है', –ऐसा कहकर कुमार जैसे-तैसे अपने घर पहुँचे। वहाँ रहकर अपने माता-पिता और दोनों रानियों को प्रसन्न किया। कुछ ही दिनों में हृदय की बात गन्धोत्कट सेठ से कहकर मामा गोविन्द महाराज के विदेह प्रदेश में जाने की योजना बनाई।

प्रश्न 1. जानते हो यह सुरमञ्जरी कौन थी?

उत्तर : हाँ! जब वनक्रीड़ा के समय गुणमाला और सुरमञ्जरी ने अपने-अपने चूर्ण की परीक्षा के लिये कुमार को नियुक्त किया था, तब गुणमाला का चूर्ण श्रेष्ठ है, यह कुमार ने सिद्ध किया था। सुरमञ्जरी तभी से जीवन्धर को चाहती थी और यह प्रतिज्ञा ली थी कि मैं जीवन्धर के अतिरिक्त किसी अन्य को नहीं देखूँगी।

प्रश्न 2. अहो! इतने दिन बाद उसकी मनोकामना पूर्ण हुई। यदि जीवन्धर उससे विवाह नहीं करते तो क्या वह जीवनभर अविवाहिता ही रहती?

उत्तर : हाँ बेटा! योग्य कुल की स्त्रियाँ जीवन में एक बार ही किसी को अपना पति बनाती हैं। शीलवती स्त्रियों की यही बात है कि वे किसी दूसरे की मन से भी चाह नहीं रखती हैं। इसी शील के कारण उन्हें उनके मनोरथों की पूर्ति भी हो जाती है।

प्रश्न 3. आज भी तो कोई कन्या ऐसा करते हुए देखी जाती है। यदि वह किसी से प्रेम करने लगे तो वह उसके अतिरिक्त, किसी अन्य को चाहती नहीं है। फिर माता-पिता उसका विवाह करने को तैयार क्यों नहीं होते हैं?

उत्तर : अरे भाई! उन पुण्यवन्तों से आज की नारी की तुलना करना व्यर्थ है। पहली बात तो यह है कि ऐसी नारी सदैव उत्कृष्ट पुरुष की ही इच्छा करती है। जो पुरुष उच्चकुल का हो, शीलवान हो, रक्षक और दयालु हो। आज की कितनी ही बेटियाँ उनसे मोहित हो जाती हैं, जिनके साथ पहले पढ़ती हैं, घूमती हैं, होटलों में खाना खाती हैं, साथ-साथ मूवी देखने जाती हैं, जिनके पास पैसा हो। बाद में ऐसा होते-होते जब शादी करने को तैयार होती है तब उन्हें पता पड़ता है कि वह अपना शील गँवा चुकी होती है। इसी कारण उनके मनोरथ की पूर्ति नहीं होती है। फिर या तो घर छोड़कर के भागती हैं या फिर आत्महत्या कर लेती हैं। ये सब पापभाव के परिणाम हैं। पुण्यवान कन्याएँ विवाह से पहले किसी युवा से अपने शरीर को स्पर्श भी नहीं होने देती हैं। यद्वा तद्वा मौज-मस्ती करके अपने शील और चरित्र को गँवाती नहीं हैं। उनके पुण्य से जब उन्हें योग्य पति मिलता है तो माँ-पिता की अनुमति से ही विवाह करती हैं। किसी के साथ घर छोड़कर भागना तो बहुत बड़ा दुश्चरित्र है।

अच्छे कुल की कन्याएँ कभी ऐसा अपयश बढ़ाने वाला कार्य नहीं करती हैं। सुरमञ्जरी की तरह इतने समय तक धैर्य रखते हुए घर से भागना आदि नहीं करते हुए, माता-पिता के साथ प्रसन्नचित्त होकर रहना किन्हीं श्रेष्ठ कन्याओं का ही कार्य है। इसीलिए भाई! आज के प्रसंगों में और पूर्व के प्रसंगों में बहुत अन्तर है।

प्रश्न 4. क्या आजकल बेटी को पढ़ाना नहीं चाहिए?

उत्तर : नहीं भाई! ऐसा नहीं कह रहे हैं। पढ़ाना-लिखाना आवश्यक है। किन्तु यह भी सिखाना जरूरी है कि जब तक विवाह न हो, किसी भी गैर लड़के के साथ बाइक पर घूमना, गले में हाथ डालकर चलना, उसके साथ खाना-पीना, मौज-मस्ती करना चरित्रहीनता है। यदि कोई लड़का कभी हाथ भी छूने की चेष्टा करे तो तुरन्त उसे सतर्क करना और दूर रहने की चेतावनी देनी चाहिए। हमें यह अच्छी तरह समझ लेना है कि प्राथमिकता (प्रायोरिटी) किसे देना है और समझौता (कॉम्प्रोमाइज) किससे करना है। पढ़ना प्राथमिकता है अथवा नैतिक-चरित्र प्राथमिकता है। यह निर्णय स्वयं करें। क्या पढ़ाई के लिए नैतिक-पतन से समझौता करना उचित है? कदापि नहीं।

(17)

मामा गोविन्द महाराज ने बहुत भारी स्नेह से और अत्यधिक हर्षमय वातावरण के साथ जीवन्धर कुमार को अपने नगर और घर में प्रवेश कराया। कुछ दिन सुख से रहने के बाद माँ की सोलह वर्ष की व्यथा को कुछ क्षण में ही दूर कर दिया। तदुपरान्त जीवन्धर कुमार ने शत्रु को जीतने के उपाय की मंत्रणा की।

उसी समय काष्ठांगार ने एक पत्र भेजा। पत्र में लिखा था–'किसी पाप के कारण मेरे माथे पर यह कलंक लग रहा है कि काष्ठांगार ने राजा सत्यन्धर को मारा है। अरे! मुझ जैसे अकिंचन को

सत्यन्धर ने स्वयं राजा बना दिया था, फिर उन्हें हानि पहुँचाने का क्या कारण हो सकता है? लोक में किसी भी प्रकार की अफवाह फैलती है, जो हवा से भी तीव्र गति की होती है। आकस्मिक इतने वर्षों बाद फैलने वाली इस अपकीर्ति को आप ही दूर सकते हैं, क्योंकि पुण्यात्माओं के समागम से ही पूर्वोपार्जित पाप दूर हो जाता है। ज्यादा क्या कहूँ? आप मुझे किंकर समझें।'

इस तरह काष्ठांगार के पत्र से उसकी कुटिलता और छल को सभी लोग अच्छी तरह से समझ गए। गोविन्दराज ने कहा–'मंत्रियों! शत्रु स्वयं हमारे इच्छित कार्य में सहायता कर रहा है। हम लोग शीघ्र ही यहाँ से चलें और अपनी पुत्री के विवाह के बहाने उस काष्ठांगार को भस्म कर दें।' इधर गोविन्दराज ने घोषणा करा दी कि हमारी काष्ठांगार से मित्रता बढ़ रही है, अतः कोई भी काष्ठांगार से शत्रुतापूर्ण व्यवहार न करें। ठीक ही कहा है–

मायापि सुहृदां हिता ॥उ.पु. ४८/१३१॥

अर्थात् अपना हित चाहने वालों की माया भी हितकारी होती है।

अपने कार्य की निर्विघ्नता के लिए गोविन्दराज ने जिनेन्द्र भगवान् की पूजा की और धन–सम्पदा देकर याचकों को संतुष्ट किया। शुभ लग्न में जीवन्धर को साथ लेकर सभी दिशाओं को धूलि से व्याप्त करने वाली चतुरंगिणी सेना को लेकर महाराज चल पड़े। हाथी, घोड़े, रथ, पदातियों की अपार सेना के साथ हेमांगद देश में प्रवेश किया। गोविन्दराज ने शिल्पियों को आदेश दिया कि राजपुरी के उत्तर की ओर राज–वसतिका बनाई जाए।

शीघ्र ही वह स्थान तैयार हो गया। काष्ठांगार ने विशेष स्वागत किया। राजा गोविन्दराज ने उस वसतिका (रुकने का स्थान) में शुभ मूहूर्त में प्रवेश किया। वहीं पर एक विशाल स्वयंवर मण्डप की रचना की गयी। तदुपरान्त राजा गोविन्दराज ने यह घोषणा करादी

कि जो कोई वीर कुमार अत्यन्त सघन चन्द्रक यंत्र से नियन्त्रित तीन वराह के पुतलों को बाण से एक साथ भेदन करने में समर्थ होगा, वह उसी दिन हमारी पुत्री का वर होगा। यह घोषणा सुनकर चोल, केरल, मालव, मागध, पाण्ड्य, कलिंग, कश्मीर आदि देशों के राजा वहाँ आ पहुँचे। देश-देश से आए राजाओं को देखने और यह स्वयंवर देखने के लिए सर्वत्र उत्साह एवं चर्चा फैल गई। साढ़े छह दिन तक क्रम-क्रम से श्रेष्ठ धनुर्धर लक्ष्य भेदन करने में चूक गए, तब जीवन्धर स्वामी सिन्दूर से सुशोभित उन्नतकाय विशाल हाथी पर सवार हो समस्त बन्धुजनों के साथ स्वयंवर मण्डप में पहुँचे। उनके शरीर, मस्तक का तेज, भुजाओं का बल, अतिशय प्रताप देखकर ही राजाओं ने समझ लिया कि यही लक्ष्य भेदन करके गोविन्दराज की पुत्री लक्ष्मणा का वरण करेगा।

आगे बढ़कर जीवन्धर स्वामी गजराज से नीचे उतरे। सबसे पहले उन्होंने सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार किया। तत्पश्चात् अपने गुरु आर्यनन्दी का स्मरण किया। लीलामात्र में यन्त्र पर चढ़कर एक साथ डोरी चढ़ाना, बाण धारण करना तथा बाण को छोड़ना इन तीनों कार्यों को करते हुए शीघ्र ही लक्ष्य भेदन किया और शत्रु को भय उत्पन्न करा दिया। वह बाण अपने कार्य की सिद्धि करके उत्तम दूत की तरह वापस भी लौट आया। सच ही है-

वीरेण हि मही भोग्या योग्यतायां च किं पुनः ॥क्ष.चू. १०/३०॥

यह पृथ्वी निश्चित ही वीरों द्वारा भोग्य होती है। फिर सब प्रकार की योग्यता होने पर तो कहना ही क्या है?

उसी समय गोविन्द महाराज ने उपस्थित सभी राजाओं के समक्ष 'यह जीवन्धर राजा सत्यन्धर का पुत्र है।'-यह यथार्थ वृत्तान्त प्रकट कर दिया। इन वचनों को सुनते ही काष्ठांगार भयभीत हो गया मानो उस पर वज्रपात हो गया हो। काष्ठांगार विचार करने लगा-यदि यह

जीवन्धर कुमार राजा सत्यन्धर का पुत्र है तो मेरे प्रिय साले 'मथन' ने इसे क्यों नहीं मारा? मैंने जीवन्धर के मामा दुष्ट गोविन्दराज को क्यों बुलाया? यह विशाल सेना लेकर आया है। हमारी योजना उलटी हमारे घात के लिए हो रही है। जीवन्धर तो बलिष्ठ योद्धा है, इस पर विजय प्राप्त करना सम्भव नहीं है।' वह सभामण्डप छोड़कर जाने लगा तो पद्मास्य आदि मित्रों ने उसे अधम, किंकर आदि कहकर खूब फटकारा। फलस्वरूप वह युद्ध के लिए तैयार हो गया। उसी समय नीच प्रकृति के राजा काष्ठांगार की ओर हो गए और उत्तम प्रकृति के राजा जीवन्धर की ओर हो गए। सच ही है–

सुजनेतरलोकोऽयमधुना न हि जायते॥ क्ष.चू. १०/३६॥

यह संसार आज ही, सुजन या दुर्जन का पक्ष लेने वाला नहीं हुआ है, किन्तु हमेशा से रहा है।

जीवन्धर ने पद्मव्यूह की रचना की। सेनाओं में परस्पर घमासान युद्ध हुआ। चारों ओर रक्त की धारा से, धड़ों और शिरों के विभाजन

से भूमि लथपथ हो गई। तभी जीवन्धर ने विचार किया कि इन क्षुद्र प्राणियों को व्यर्थ में मारने से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? वह शत्रु ही समूल नष्ट करना चाहिए। जीवन्धर ने काष्ठांगार का ही आह्वान किया। काष्ठांगार फुंकारते हुए सर्प के समान आग बबूला होकर निकला। शीघ्र ही तलवार लेकर जीवन्धर पर झपटा। तभी जीवन्धर ने बीच में ही तीक्ष्ण शक्ति के प्रहार से उस काष्ठांगार के खण्ड–खण्ड कर दिये।

विजयपताका फहरा दी गई। राजसमूह ने जीवन्धर का उत्तम–उत्तम भेंटो के साथ अभिवाद किया। जीवन्धर कुमार ने सभी का आभार व्यक्त किया। प्रजाजनों में सर्वत्र जीवन्धर कुमार की प्रशंसा हो रही थी। भगवान् जिनेन्द्र देव में अत्यन्त श्रद्धा रखने वाले जीवन्धर ने राजपुरी के स्वर्णमय 'त्रिजगत्सार' नाम के जिनालय में श्रेष्ठ सामग्री से भगवान् का अभिषेक व भक्तिपूर्वक पूजा की। उसी समय वह कृतज्ञ देव यक्ष बड़े आदर से आकाश से नीचे उतरा।

उस देव ने जीवन्धर महाराज को राजपुरी के सिंहासन पर विराजमान करके स्वर्णमयी कलशों से इस तरह राज्याभिषेक किया,

जैसे इन्द्र सुमेरु पर्वत पर जिनेन्द्र भगवान का करता है। पश्चात् अनेक प्रकार से अभिवन्दन करके वह चला गया।

प्रश्न 1. इस प्रसंग से हमें क्या सीख मिलती है?

उत्तर : पाप कार्य का फल अवश्य मिलता है, चाहे कुछ देर क्यों न हो।

प्रश्न 2. कुछ लोग कहते हैं कि जो पाप करते हैं, वे ज्यादा सुखी और सम्पन्न दिखाई देते हैं। ऐसा क्यों होता है?

उत्तर : यह हमारी अपनी सोच हो सकती है। कर्मसिद्धान्त तो ऐसा नहीं है। प्रत्येक आत्मा को अपने किए पाप का फल अवश्य भोगना होता है। जो लोग वर्तमान में पाप करते हुए सुख-सम्पन्न दिखाई दे रहे हैं, वे पूर्व में अर्जित पुण्य का फल भोग रहे हैं। जिस समय वर्तमान का पाप अधिक हो जाएगा, उनकी सत्ता-वैभव अपने आप समाप्त हो जाएगा।

प्रश्न 3. जब एक पुरुष अनेक विवाह करता है तो क्षत्रिय, पुण्यवान कहा जाता है, किन्तु जब कोई स्त्री ऐसा करे तो उसे दुश्चरित्रा कही जाती है। ऐसा भेदभाव क्यों?

उत्तर : यह पुरुष और स्त्री के शरीरगत स्वभाव से है। पुरुष भोक्ता है, स्त्री भोग्या है। गर्भधारण स्त्री ही करेगी, पुरुष नहीं। चाहे स्त्री कितनी ही समानता के अधिकार की लड़ाई लड़े। दूसरी बात प्रत्येक सन्तान की एक माँ, एक पिता होता है। यह व्यवस्था तभी रहती है, जब स्त्री का एक विवाह हो। माँ वही कहलाती है जिसके गर्भ से जन्म लिया जाता है, पिता वह है जो जन्म-दाता है। स्त्री के कई पति होने पर एक पुत्र को अनेक पिता होने की आपत्ति और कलंक लगता है, किन्तु ऐसा एक पति की कई रानी के होने पर नहीं होता, क्योंकि माँ एक ही होती है। इस नैसर्गिक, प्राकृतिक प्रक्रिया को समझने का प्रयास करें।

(18)

जीवन्धर कुमार को राजसिंहासन प्रदान किया गया। कुमार ने गन्धोत्कट को राजश्रेष्ठी के पद पर, नन्दाढ्य को युवराज के पद पर, पद्मास्य आदि मित्रों को महामन्त्री आदि के पदों पर नियुक्त किया। देशवासी जनों को बारह वर्ष तक लगान की छूटी दी। जिन-जिन स्त्रियों से जीवन्धर कुमार ने पूर्व में विवाह किया था, उनको अन्तःपुर में बुलाया गया। प्रधान चाण्डाल ने नगर में घोषणा की 'समीचीन धर्म वृद्धि को प्राप्त हो। समस्त भूमि का अधिपति राजा कल्याण से युक्त हो। चिरकाल तक पृथ्वी ईति-भीति से रहित हो।' इत्यादि अनेक राज्योचित कार्य होने के बाद गोबिन्द महाराज की पुत्री लक्ष्मणा से जीवन्धर कुमार का विवाह शुभ लग्न एवं शुभ मुहूर्त में हुआ। उन्हें आठवें लाभ की प्राप्ति हुई। इस तरह राजा जीवन्धर कुमार बहुत समय तक धर्म, अर्थ, काम का संचय करते हुए अनासक्त रहकर ही स्वभाग्य से प्राप्त सुख

का वह अनुभव करते रहे। पुत्र का साम्राज्य देखकर राजमाता विजया का जीवन मानो सफल हो गया।

संसार की विचित्रता को साक्षात् देखने वाली विजया रानी को वैराग्य हुआ। माँ विजया और सुनन्दा दोनों ने ही पद्मा नाम की आर्यिका से दीक्षा प्राप्त की। यह सत्य कथन है-

भस्मने रत्नहारोऽयं पण्डितैर्न हि दह्यते॥११/१८॥

मनुष्यजन्म-रूपी रत्नों के हार को बुद्धिमान् लोग इन्द्रिय विषयरूपी भस्म के लिए नहीं जलाते हैं।

जीवन्धर सम्राट् अपनी माताओं के वियोग से दुःखी हुए किन्तु जीवों की परिणति और भवितव्यता का विचार करते हुए वे किसी तरह सन्तुष्ट हो गए। अपनी आठ रानियों और पुत्रों, पुत्रवधुओं के साथ जीवन्धर ने तीस वर्ष निमेष मात्र की तरह सुखोपभोग में व्यतीत कर दिए।

एक दिन जलक्रीड़ा करने के पश्चात् उद्यान में विहार करते हुए जीवन्धर ने बन्दरों की चेष्टाओं को ध्यानपूर्वक देखा। उन्होंने

देखा–अत्यन्त निपुण एक वानर ने अन्य वानरी के साथ समागम किया, तभी उसकी अपनी वानरी कुपित हो गई। उस बन्दर ने उसे बहुत मनाया, पर वह सन्तुष्ट नहीं हुई। तभी वह वानर अभिनय करता हुआ बोला–'हे प्रिये! मुझे देख, मैं मर रहा हूँ।' यह कहकर उसने आँखें फेर दीं और क्षणभर में ही मृतक की तरह पृथ्वी पर गिर पड़ा। बेचारी वानरी ने उसे सचमुच में मरा समझ लिया और विलाप करने लगी– 'हाय! यह क्या किया, मैं पापिनी मर गयी। मैंने उस वानरी से द्वेष में सब कुछ खो दिया।' अन्त में वह बार–बार उस वानर की छाती पर लिपट–लिपट कर जलसिंचन आदि के द्वारा वानर को जीवित कर सकी। तभी वह चतुर वानर कटहल फल को तोड़कर लाया और अपनी प्रिया वानरी को प्रेमपूर्वक दिया। इतने में किसी वनपाल ने आकर उस वानर युगल को भगा दिया और फल छीन लिया।

यह देखकर जीवन्धर ने विचार किया कि जीवों का वैभव व प्रताप ही बलवान् के अधीन नहीं है, अपितु उसका जीवन भी बलवान् के अधीन है। जो आचरण मैंने किया है, वह भी इसी तरह कष्टदायी है। जिससे फल छिन गया है ऐसा यह वानर काष्ठांगार के समान है। मैं वनपाल के समान फल छीनने वाला हुआ हूँ। यह कटहल फल राज्यं के समान है। मैंने व्यर्थ में इस तुच्छ फल (राज्य) के लिए इतना दीर्घ काल व्यतीत किया है। यह राज्य न किसी का हुआ है, न हो सकता है। जो भोग अन्त में मनुष्य को ही छोड़ देता है, उस राजभोग से अविवेकी मनुष्य अपने को ठगता रहता है। इस तरह संसार, शरीर और भोग की वास्तविकता का विचार करके जीवन्धर महाराज विरक्त हो गए क्योंकि संसार कटुता से भरा है तथा मोक्ष अमृत के समान है।

हस्तस्थेऽप्यमृते को वा तिक्तसेवापरायणः!! क्ष.चू. ११/८२॥

हाथ में अमृत रखा होने भी कौन बुद्धिमान् पुरुष कड़वी वस्तु के सेवन करने में तत्पर होगा? कोई भी नहीं।

उद्यान से बाहर निकलकर वे जिनमन्दिर में पहुँचे। वहाँ भक्ति से ओतप्रोत होकर जिनेन्द्र देव की मनसा, वाचा, कर्मणा अत्यधिक अर्चना की। पश्चात् वहीं समीप में विराजमान दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज के चरणों में नम्रीभूत होकर प्रदक्षिणा देकर सविनय निवेदन किया–'मुझे ऐसा उपदेश दीजिए, जिससे मेरा संसार भ्रमण शान्त हो जावे तथा मेरे पूर्व भव के विषय में भी बताइए।' मुनिराज ने राजा को उसके पूर्व भव का वृतान्त इस प्रकार सुनाया–हे राजन्! तुम पूर्व भव में धातकीखण्ड के भूमितिलक नगर में राजा पवनवेग के यशोधर नामक सुपुत्र थे। एक बार तुमने मनोविनोद में एक राजहंस के बच्चे को पकड़कर उसका पालन–पोषण किया। तभी तुम्हारे पिता ने तुम्हें अहिंसामयी जैनधर्म का उपदेश दिया था जिससे प्रभावित होकर तुमने जैनदीक्षा धारण कर ली तथा तुम्हारी आठों स्त्रियाँ भी आर्यिका हो गयी थी। मुनि के रूप में तुमने घोर तपश्चरण किया परिणामस्वरूप तुम वैमानिक देव हुए। अपनी आयु पूर्ण करके तुम मनुष्य पर्याय में जीवन्धर के रूप में आठ रानियों सहित आए हो। राजहंस के बच्चे को तुमने स्थान व माता–पिता से अलग किया था। अतः तुम्हें भी अपने माता–पिता तथा राज्य से अलग रहना पड़ा। पूर्व जन्म की तपस्या के कारण तुम पुनः आठ रानियों के साथ राज्य का सुख भोगते रहे हो। इस प्रकार जीवन्धर का पूर्व भव सुनाकर मुनिवर ने उसे रत्नत्रय का उपदेश दिया। चारों गति के दुःखों का वर्णन किया।

पश्चात् धर्म और धर्म का फल समझकर जीवन्धर राजा ने अपनी प्रिय पटरानी गन्धर्वदत्ता के ज्येष्ठ पुत्र सत्यन्धर कुमार को राज्यपट्ट पर अभिषिक्त करके सभी को सन्तुष्ट किया। वैराग्य से युक्त होकर हजारों मनुष्यों के साथ वे समवसरण की ओर चल पड़े। भगवान् महावीर के समवसरण में पहुँचकर अतिदिव्य सुर–अप्सराओं को भी मोहित करने वाली स्तुति, वन्दना की। भगवान् की दिव्यध्वनि

का अलौकिक रसपान किया। पश्चात् गणधर देव के समीप स्थित होकर छोटे भाई नन्दाढ्य और अन्य अनेक राजाओं के साथ अपने केश, आभूषण, वस्त्र, माला, अंगराग आदि बाह्य परिग्रह और राग–द्वेष आदि अभ्यन्तर परिग्रह को छोड़ दिया। निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर पंच परमेष्ठी की साक्षी में उन्होंने परम संयम धारण किया। बहुत समय तक अत्यन्त कठिन तप करने के बाद केवलज्ञान प्राप्त किया। चतुर्निकाय के देवों ने पूजा की। भगवान् महावीर के साथ विहार किया। अन्त में विपुलाचल पर्वत से शेष अघाति कर्मों का नाश करके अनुपम मोक्ष अर्थात् अपना अन्तिम लक्ष्य प्राप्त कर लिया।

प्रश्न 1. जीवन्धर स्वामी को मोक्ष कहाँ से हुआ?

उत्तर : जीवन्धर स्वामी को मोक्ष राजगृही के विपुलाचल पर्वत पर हुआ।

प्रश्न 2. जीवन्धर स्वामी के केवलज्ञान उत्पत्ति के समय देवों ने उनकी पूजा की, जबकि वह तीर्थंकर महापुरुष तो थे नहीं?

उत्तर : सामान्यत: किसी भी आत्मा को केवलज्ञान और मोक्ष होने पर देव लोग उनकी पूजा के लिए आते हैं, भले ही वह

सामान्य केवली हों। इतना विशेष है कि तीर्थंकर का केवलज्ञान उत्सव मनाने के लिए सौधर्म इन्द्र सहित सभी स्वर्ग के देव आते हैं, उनका समवसरण लगता है, दिव्यध्वनि से तीर्थप्रवर्तन होता है, किन्तु सामान्य केवली के मोक्ष के समय पर कुछ देव ही आते हैं, उनकी गंधकुटी लगती है और धर्मोपदेश होता है।

प्रश्न 3. भगवान् अनन्तकाल तक मोक्ष में क्या करते हैं?

उत्तर : भगवान् मोक्ष में आत्मा मात्र रह जाते हैं। अपने आत्मा के स्वाभाविक ज्ञान, सुख आदि अनन्त गुणों में आनन्दित रहते हुए वे ज्ञाता-दृष्टा मात्र बने रहते हैं।

प्रश्न 4. वह हमेशा एक जैसी अवस्था में कैसे रह सकते हैं?

उत्तर : जब किसी द्रव्य का किसी दूसरे द्रव्य से संयोग होता है, तब उसकी अवस्थायें बदलती है। किन्तु जब द्रव्य स्वतंत्र हो जाता है, तब वह स्वाभाविक अवस्था में बने रहते हैं।

प्रश्न 5. क्या अनन्तकाल तक एक जैसा बने रहना सम्भव है?

उत्तर : हाँ! स्वभाव में अनन्तकाल तक रहा जा सकता है, विभाव में एक जैसा नहीं रह सकते हैं। जैसे पानी जब अग्नि के बिना है, तो वह शीतल बना रह सकता है किन्तु जब वह अग्नि के संयोग में रहता है तो वह एक समान अवस्था में नहीं रह सकता है। उसकी अवस्था अग्नि की तीव्रता, मंदता पर निर्भर करती है।

प्रश्न 6. जीवन्धर स्वामी को मोक्ष भगवान् महावीर के समय हुआ। फिर उनका नाम केवलियों में क्यों नहीं गिना जाता, जबकि तीन केवली ही गिने जाते हैं?

उत्तर : भगवान् महावीर के समय में और उनके बाद भी अनेक केवली भगवान् हुए और मोक्ष को प्राप्त हुए। उन सभी का उल्लेख क्रमशः उपलब्ध नहीं है। जो तीन केवली के नाम कहे जाते हैं, वे अनुबद्ध केवली हैं। अनुबद्ध केवली का अर्थ है-एक केवलज्ञानी

के मोक्ष होने के बाद उसी दिन अन्य मुनिराज को केवलज्ञान हो जाना और इसी तरह यह क्रम चलता रहता है। यह क्रम केवल तीन केवलियों के साथ चला है। भगवान् महावीर के निर्वाण के दिन ही केवलज्ञान प्राप्त करने वाले प्रथम केवली गौतम स्वामी, इसी तरह उनके मोक्ष जाने पर उसी दिन केवलज्ञान प्राप्त करने वाले दूसरे सुधर्मा स्वामी, फिर उनके मोक्ष होने पर उसी दिन केवलज्ञान प्राप्त करने वाले जम्बूस्वामी, तृतीय अनुबद्ध केवली हुए हैं। इसके बाद क्रम टूट गया और अन्तिम केवली श्रीधर माने जाते हैं, जिनके कि चरण श्रीकुण्डलपुर सिद्धक्षेत्र में बने हैं।

प्रश्न 7. जीवन्धर चरित का वर्णन किस ग्रन्थ में उपलब्ध है?

उत्तर : जीवन्धर चरित के लिए दो स्वतन्त्र ग्रन्थ आचार्य श्री वादीभसिंह ने रचे हैं–1. गद्यचिन्तामणि 2. क्षत्रचूड़ामणि। इसके अतिरिक्त आचार्य श्री गुणभद्र के उत्तरपुराण में भी इनका वर्णन है। महाकवि हरिचन्द्र ने संस्कृत में 'जीवन्धरचम्पू' की रचना की है। अन्य भाषाओं में लगभग 13 कवियों ने जीवन्धर को पात्र (लक्ष्य) बनाकर रचनायें की हैं।

रतलाम

31.1.2014, शुक्रवार (माघ शुक्ला 1)

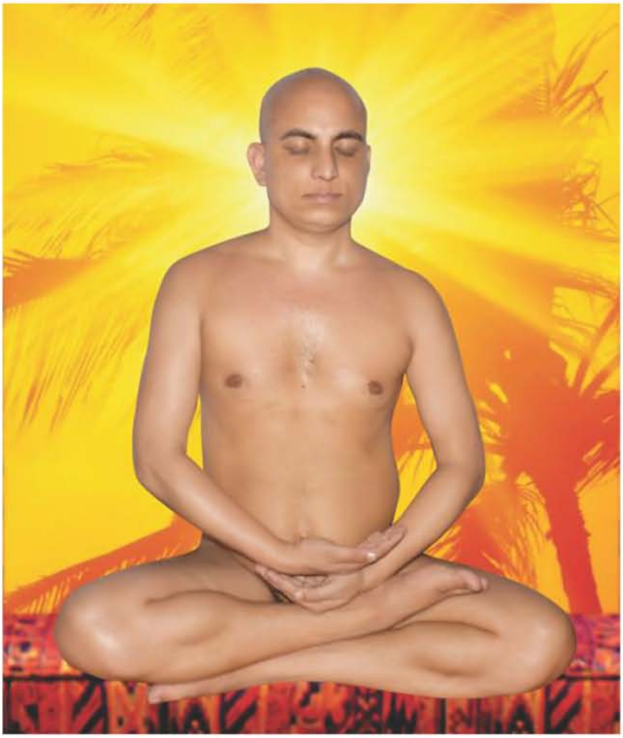

मुनि श्री प्रणम्यसागरजी महाराज

पूर्व नाम	:	ब्र. सर्वेशजी
पिता-माता	:	श्री वीरेन्द्रकुमार जी जैन, श्रीमती सरितादेवी जैन
जन्म	:	13.09.1975, भाद्रपद शुक्ल अष्टमी भोगाँव, जिला-मैनपुरी (उ. प्र.)
वर्तमान में	:	सिरसागंज (फिरोजाबाद) (उ. प्र.)
शिक्षा	:	बी. एस. सी. (अंग्रेजी माध्यम)
भाई	:	सचिन जैन
बहिन	:	सपना जैन
गृहत्याग	:	09.08.1994
क्षुल्लक दीक्षा	:	09.08.1997, नेमावर
ऐलक दीक्षा	:	05.01.1998, नेमावर
मुनि दीक्षा	:	11.02.1998, माघसुदी 15, बुधवार, मुक्तागिरिजी
दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ -

1. लिङ्गपाहुड़ (नन्दिनी टीका)
2. शील पाहुड़ (नन्दिनी टीका)
3. समाधि तन्त्र (आर्हतभाष्य)
4. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका)
5. बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
6. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
7. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (मंगला टीका)
8. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ('नीति-पथ')
9. तत्त्वार्थ सूत्र (तत्त्व संदीपिनी टीका, संस्कृत-प्राकृत)
10. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ -

1. सत्कर्म पंजिका 2. दश भक्ति टीका
3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)
4. कथा कोश 5. सत्य शासन परीक्षा
6. युक्त्यनुशासन 7. नाममाला (भाष्य)
8. सत्संख्यादि अनुयोगद्वार 9. पात्रकेसरी स्तोत्र
10. अद्याष्टक स्तोत्र 11. संन्यास एषोस्तु किमात्मघात:
12. चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति (आ. माघनन्दि)
13. नियमसार 14. समयसार 15. परीक्षामुख
16. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

पद्यानुवाद

1.पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 2. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
3. तत्त्वार्थ सूत्र 4. पात्र केसरी स्तोत्र
5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र 6. श्री वर्धमान स्तोत्र
7. मंगलाष्टक 8. माघनन्दि कृत अभिषेक पाठ
9. उपयोग शतक

प्रवचन ग्रंथ

1. वारसानुवेक्खा
2. नई छहढाला प्रवचन
3. परमात्म योग (समाधि तन्त्र)
3. अध्यात्म योग (इष्टोपदेश)
4. जीव विज्ञान (तत्वार्थसूत्र अध्याय-2)
5. मनोविज्ञान (तत्वार्थसूत्र अध्याय-6)
6. लोक विज्ञान (तत्वार्थसूत्र अध्याय-3-4)
7. व्रत विज्ञान (तत्वार्थसूत्र अध्याय-7)

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ -

1. स्तुति पथ (इस कृति में निम्नलिखित स्तुतियाँ हैं)

1. प्रार्थना 2. वीराष्टकम् 3. भरताष्टकम् 4. शारदाष्टकम्
5. कुन्दकुन्दाष्टकम् 6. समन्तभद्राष्टकम् 7. शान्त्यष्टकम्
8. ज्ञानाष्टकम् 9. विद्याष्टकम् 10. मौनाष्टकम्
11. निजबोधाष्टकम् 12. आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रशस्ति पत्र
13. आचार्य श्री विद्यासागर पूजन

2. श्रायस पथ
3. सिद्धोदयाष्टकम्
4. श्री वर्धमान स्तोत्र।
5. अनासक्त महायोगी (आचार्यश्री का जीवनवृत्त)
6. उपयोग शतकम्

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ -

1. तित्थयर भावणा
(सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ)
2. दार्शनिक प्रतिक्रमण
3. अष्टपाहुड़ (प्राकृत टीका)
4. धम्मकहा 5. प्राकृत रचना भास्कर
6. प्राकृत शिक्षा भाग 1-2 -3 -4
7. गोम्मटेस पडिमा भत्ति

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगद्रष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)
2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेन्ट)
4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख)
5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन ?
6. अन्तर्गूंज (भजन एवं हाइकू)
7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)
8. बेटा! (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ) 9. नई छहढाला
10. लक्ष्य (जीवंधर चरित्र) 11. मुनि सुब्रतनाथ विधान
12. अर्हम् दोहावली 13. अर्हं ध्यान योग
14. जिंदगी क्या है ?

संकलन

1. संवाद (आचार्य श्री और बाबा रामदेव की चर्चा)
2. A Talk (संवाद का अंग्रेजी अनुवाद)
3. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन

अंग्रजी भाषा में

1. Fact of Fate (articles)
2. Twelve Comtemplation 3. I Love my Soul

ISBN 978-81-939298-5-9

9 788193 929858

प्रकाशक
आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति
उज्जैन (म.प्र.)